हितहरिवंश गोस्वामी

डॉ॰ कृष्णदेव झारी

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

शारदा कवि अध्ययन-माला—२

हितहरिवंश गोस्वामी

[राधावल्लभ सम्प्रदाय और उसके प्रवर्त्तक हितहरिवंश गोस्वामी का अध्ययन]

डॉ० कृष्णदेव झारी

शारदा प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-३०

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दो शब्द

कृष्ण-भक्ति के राधाबल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवंश गोस्वामी ने रस-रीति के एक नये भक्ति-मार्ग को चलाकर मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति-काव्य को एक नई दिशा प्रदान की थी। इस मार्ग में राधा-कृष्ण की युगल-उपासना संयोग-रूपा निकुंज-लीला के माधुर्य से मंडित हो गई। राधा-कृष्ण की प्रेममय निकुँज-लीला का हितहरिवंश और उनके अनुयायी कवियों ने बड़ा मादक चित्रण किया है। पर यह माधुर्य-भाव-भक्ति प्रमाता की दृष्टि से एक चुनौती ही बनी हुई है। पाठक या प्रमाता इस निकुँज-रस-लीला को भक्ति के रूप में कहाँ तक ग्रहण करता है, यह एक ज्वलंत प्रश्न यहाँ भी बना हुआ है। हितहरिवंश और उनकी इस भक्ति-पद्धति पर रीझने वाले विचारकों से सहमत होना मेरे लिए कठिन रहा है। चाहे भक्तगण हितहरिवंश आदि इस सम्प्रदाय के कवियों की वाणी से कितने ही भक्ति-भाव-विभोर होते रहे हों और सम्भवत: आज भी होते हों, पर हमें तो इस निकुंज-प्रेम में भक्ति की कोई विशेष अनुभूति नहीं होती। यह प्रेम-चित्रण मुख्यत: शृंगार रस का ही विषय है। फिर भी कवि की दृष्टि से इस भक्ति-भाव का अध्ययन रोचक है।

प्रस्तुत पुस्तक में कृष्ण-काव्य-धारा के सभी सम्प्रदायों और भक्ति-मार्गों की तुलना में राधाबल्लभ सम्प्रदाय और हितहरिवंश की भक्ति-पद्धति को स्पष्ट करते हुए हितहरिवंश के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है। हित-हरिवंश के कृतित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा करने वाले और उन्हें सूरदास से भी अधिक भाव-कला-शिल्पी कह देने वाले विचारकों से असहमति प्रकट करना आवश्यक था। एतत्संबंधी सभी सम्बद्ध प्रश्नों का निष्पक्ष निजी समाधान करने का प्रयत्न किया गया है। आशा है राधाबल्लभ सम्प्रदाय और हितहरिवंश की रस-रीति का अध्ययन करने वाले पाठकों को यह पुस्तक उपयोगी प्रतीत होगी।

—कृष्णदेव झारी

भूलभुलैयां रोड,
महरौली, नई दिल्ली-३०

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

लेखक की अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ

शोध और आलोचना

- रस-सिद्धांत और घृणा भाव का मनोवैज्ञानिक विवेचन ३०.००
- बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य २५.००
- उदात्त रस-सिद्धांत और नयी कविता २०.००
- भारतीय काव्य-शास्त्र के सिद्धांत २०.००
- साहित्यिक निबंध १२.५०
- पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के सिद्धांत २०.००
- प्रेमचंद की उपन्यास-कला का उत्कर्ष : गोदान २८.००
- युगकवि निराला १०.००
- मध्यकालीन कृष्णकाव्य (तृतीय संशोधित संस्करण) ३५.००
- महाकवि सूरदास २०.००
- अष्टछाप और नंददास २२.००
- मैथिल-कोकिल विद्यापति १५.००
- मीरांबाई १०.००
- रसखान १०.००
- अष्टछाप के कवि परमानन्ददास १५.००
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल : आलोचक और निबंधकार १५.००
- उपन्यासकार इलाचंद्र जोशी १२.००
- भगवतीचरण वर्मा और उनका भूले-बिसरे चित्र १०.००
- भगवतीचरण वर्मा और उनका टेढ़े-मेढ़े रास्ते १०.००
- धर्मवीर भारती और उनकी कनुप्रिया ४.००
- धर्मवीर भारती और उनका अंधायुग १०.००
- मोहन राकेश और उनका आषाढ़ का एक दिन १०.००
- तीन विमर्श : तेरह निबंध ६.००
- रीतिकालीन काव्य और बिहारी १०.००

अनूदित-रूपांतरित

- लखनऊ की नगर-वधू (उमराव जान अदा) १३.००
- गीता-रहस्य (लोकमान्य तिलक-विरचित) २५.००

राजनीतिक-ऐतिहासिक

- बंगला देश और भारत-पाक युद्ध अप्राप्य
- कश्मीर समस्या और भारत-पाक-युद्ध ,,
- विधान-सभा चुनाव ८.००

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

: १ :

कृष्ण-काव्य के आलम्बन और भक्ति

कृष्ण : उद्‌भव और स्वरूप-विकास—

कृष्ण-काव्य के आलम्बन कृष्ण और उनकी चरित्र-कथा भारतीय संस्कृति का मूल है। कृष्ण-कथा और प्रसंग ने मूर्ति, वास्तु, चित्र, नृत्य, गीत-संगीत आदि सभी भारतीय ललित कलाओं तथा आभूषण, प्रसाधन, व्यंजन-मनोरंजन, आमोद-प्रमोद, धर्म-भक्ति आदि सभी तत्त्वों को प्रभावित किया। ईसा के आरम्भ से गुप्तकाल तक तथा बाद को १५वीं-१६वीं शताब्दी में यह प्रभाव अत्यन्त व्यापक, प्रगाढ़ एवं लोक-व्यापी हो गया। राम और रामाख्यान की तरह—और कहीं-कहीं, कभी-कभी तो उससे भी अधिक—कृष्णचरित ने भी भारतीय जीवन के समस्त अंगों को आच्छादित कर लिया।

मूल रूप में कृष्ण महाभारत-काल के ऐतिहासिक महापुरुष थे। यों तो ऋग्वेद में भी कृष्ण अंगिरस नाम के एक ऋषि और उनके पुत्रादि का उल्लेख हुआ है (ऋग्वेद ८/८५/१-७) तथा एक स्थान पर कृष्ण नामक एक असुर की भी चर्चा है (ऋग्वेद ८/९६/१३-१५), ऐतरेय आरण्यक में भी कृष्ण हारीत नाम के एक उपाध्याय का उल्लेख हुआ है, पर प्रसिद्ध कृष्णाख्यान से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। उत्तर-वैदिक साहित्य में ही कंसारि कृष्ण का उल्लेख मिलता है। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में घोर अंगिरस के शिष्य कृष्ण को जो देवकीपुत्र कहा गया है (छान्दोग्य-उपनिषद्-३/१७/६), वह भी संयोग की बात ही प्रतीत होती है। महाभारत और पुराणों के देवकीनन्दन कंसारि कृष्ण से उनका भी कोई सम्बंध प्रतीत नहीं होता।

महाभारत (ईसा पूर्व १००० वर्ष) से ही कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। महाभारत और बाद में हरिवंश पुराण, भागवत आदि पुराणों में कृष्ण-चरित्र की जो विस्तृत चर्चा है, उसमें कितना अंश ऐतिहासिक है, इसका ठीक-ठीक निर्णय तो कठिन है, पर पौराणिक-धार्मिक आवरणों को हटाने से कृष्ण के चरित्र की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का पर्याप्त आभास मिल सकता है। महाभारत के प्राचीन अंशों में कृष्ण के देवत्व या अवतारवाद की कोई कल्पना प्रतीत नहीं होती। बाद के अंशों में अवश्य कृष्ण को परमेश्वर नारायण और अवतार माना गया है। बौद्ध जातकों तथा जैनागम ग्रन्थों आदि अवैष्णव रचनाओं में भी मानव-कृष्णाख्यान मिलता है, जिससे प्रमाणित होता है कि कृष्ण अपने समय के बहुत प्रसिद्ध महापुरुष थे।

महाभारत में कृष्ण-सम्बन्धी अनेक प्रसंग पाये जाते हैं। सभापर्व में भीष्म ने कृष्ण की प्रशस्ति करते हुए उन्हें ज्ञानी, विद्वान्, समस्त वेद-शास्त्रों का ज्ञाता, कुशल राजनीतिज्ञ, शूरवीर कहा है। यद्यपि महाभारत में भी अलौकिक तत्त्व समा गये थे, जिनके कारण कृष्ण को परमेश्वर का दर्जा भी प्राप्त हुआ, तथापि अधिकतर महाभारत

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

में महापुरुष कृष्ण के ही दर्शन होते हैं। सच तो यह है कि कृष्णाख्यान के इस मूल ग्रन्थ (महाभारत) से ही हमें कृष्ण के दोनों ही रूप प्राप्त होते हैं—१. लौकिक मानव कृष्ण, २. अलौकिक परमेश्वर कृष्ण। मानव कृष्ण-सम्बन्धी कुछ अतिशयोक्तियाँ भी महाभारत में हैं, जैसे कहा गया है कि देवताओं ने प्रसन्न होकर कृष्ण को अवध्यता का वरदान दिया हुआ था, पर इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कृष्ण ने वृष, प्रलम्ब, नरक, मुर, कंस आदि अनेक दस्युओं का संहार, रुक्मिणीहरण, नागजित के पुत्रों पर विजय, काशी-नगरी का उद्धार आदि अनेक वीरता के कार्य किये थे। महाभारत में कृष्ण के शृंगारिक रसिक रूप को कहीं कोई उल्लेख नहीं। सभापर्व में भी शिशुपाल कृष्ण की निन्दा करते हुए जहाँ कृष्ण-द्वारा पूतना, केशी, बकासुर, कंस आदि की हत्या का उल्लेख करता है, वहाँ कृष्ण के विलासी - गोपी-वल्लभ रूप का कोई जिक्र नहीं करता। चाहे सभापर्व का यह अंश प्रक्षिप्त माना जाय, तथापि इससे यह सत्य प्रमाणित होता है कि रास-रसिक गोपी-वल्लभ कृष्ण की कल्पना महाभारत में नहीं आ पाई थी। अतः ब्रजबिहारी गोपाल कृष्ण के चरित का आविर्भाव और विकास महाभारत के बाद ही हुआ।

ईसा के आरम्भ से पुराणकाल तक ही कृष्ण के शृंगारी रसिक रूप की अवतारणा और पूर्ण विकास हुआ। सम्भवतः महाभारत और जातकों में वर्णित कृष्ण के रुक्मिणी-हरण, सत्यभामा-मान-मनुहार, 'महाउमग्ग जातक' के अनुसार कृष्ण-द्वारा ऋक्ष-कन्या जांबवती पर कामासक्त होकर उसे महिषी बनाना आदि प्रसंगों के आधार पर लोक-जीवन तथा साहित्य में ईसा के आरम्भकाल या इससे कुछ पूर्व ही कृष्ण का रसिक रूप भी प्रचलित हो चुका था। हाल की 'गाहा सतसई' की कई गाथाएँ कृष्ण के रसिक प्रेमी रूप की परिचायक हैं। कृष्ण के राजसी-वैभव का ऐश्वर्यपूर्ण और विलास-क्रीड़ाओं का नग्न चित्रण सर्वप्रथम हरिवंशपुराण में विस्तारपूर्वक मिलता है। हरिवंशपुराण के ८८-८९वें अध्याय में कृष्ण अपनी सोलह हजार स्त्रियों और वेश्याओं के साथ जल-क्रीड़ा तथा भोग-विलास में मग्न दिखाये गये हैं। हरिवंश-पुराण और विष्णु-पुराण में गोपाल कृष्ण का संक्षिप्त वर्णन है। भागवतपुराण में कृष्ण के जन्म से लेकर द्वारिकावास तक का सम्पूर्ण चरित्र अंकित हुआ है। गोपाल कृष्ण, ब्रज-बिहारी रसिक कृष्ण, बालकृष्ण आदि कृष्ण के सब रूपों—ऐश्वर्यपूर्ण राजस और माधुर्यपूर्ण शृंगारी आदि सभी का विस्तृत चित्रण हुआ है। भागवतपुराण में कृष्ण की लोकप्रचलित सभी लीलाओं को अधिकाधिक महत्त्व मिला है।

कृष्णभक्ति का विकास : कृष्ण के देव-रूप का विकास

वीर और महान् की पूजा के जनसिद्धान्त ने कृष्ण को शीघ्र ही आराध्य देव बना दिया। आरम्भ में कृष्ण सात्वत विष्णि जाति के पूज्य पुरुष रहे, बाद में शीघ्र ही पूज्यदेव बन गये। कृष्ण का सर्वप्राचीन देव-रूप वासुदेव है। पाणिनि (ई० पू० छठी शताब्दी) की 'अष्टाध्यायी' में सर्वप्रथम वासुदेव का उल्लेख मिलता है। सात्वत जाति में न केवल वासुदेव की पूजा प्रचलित थी, अपितु उनके साथ संकर्षण (बलराम),

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रद्युम्न (रुक्मिणी से कृष्णपुत्र), शाम्ब (जाम्बवती से कृष्णपुत्र) और अनिरुद्ध (प्रद्युम्न-पुत्र) की पूजा का भी विधान था । महाभारत, जातक कथाओं तथा पौराणिक प्रसंगों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सब ऐतिहासिक पुरुष थे और सात्वत जाति में पंचवीरों के रूप में विख्यात हो चुके थे, जिन्हें बाद में देवत्व प्राप्त हुआ । पुराणों में सर्वप्राचीन वायुपुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि विष्णि वंश के इन पाँच वीरों की पूजा होती थी । इनमें वासुदेव को वरीयता प्राप्त थी । दूसरा स्थान संकर्षण का था । मैगास्थनीज ने भी स्पष्ट लिखा है कि ईसापूर्व चौथी शताब्दी में मथुरा प्रदेश में वासुदेव की उपासना प्रचलित थी । मथुरा प्रदेश की यही वासुदेव-उपासना भागवत धर्म के रूप में विकसित हुई और पश्चिमी और दक्षिणी भारत में फैलती गई । तक्षशिला से प्राप्त एक अभिलेख से पता चलता है कि ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में तक्षशिला के यवनराज अन्तिग्रालकिद के समय में वासुदेव के गरुड़ध्वज की स्थापना हुई थी । चित्तौड़ (राजस्थान) में ई० पू० पहली शताब्दी में कई भागवत (वासुदेवोपासक) राजा हुए थे । एक अभिलेख के अनुसार सर्वतात नामक राजा ने संकर्षण-वासुदेव पूजा-शिला-प्राकार का निर्माण कराया था ।

कुछ विद्वान् भ्रमवश इस वासुदेव रूप और कृष्ण रूप के एक होने में सन्देह करते हैं । पातंजलि (पहली शताब्दी ई० पू०) के भाष्य में वासुदेव की कृष्ण से अभिन्नता का स्पष्ट उल्लेख है (जघान कंस किलवा देवः ३/२/२३) । हरिवंशपुराण आदि परवर्ती रचनाओं में भी वासुदेव कृष्ण को ही भागवत धर्म का आराध्यदेव कहा गया है । आरम्भ में कृष्ण की अपेक्षा वासुदेव नाम के प्रचलन का रहस्य क्या है ? इस सम्बन्ध में मेरा निश्चित मत है कि १. आरम्भ में कृष्ण नाम लौकिक पुरुष के रूप में प्रसिद्ध रहा होगा । कृष्ण के बालचरित तथा लौकिक कार्यों का स्मरण कृष्ण नाम से किया जाता था और उनके देवत्व रूप को वासुदेव नाम मिला । बौद्ध जातकों आदि में, जहाँ कृष्ण के लौकिक रूप की मान्यता है, अधिकतर कृष्ण या कान्ह नाम ही मिलता है, पर आराध्य रूप में वासुदेव नाम अधिक प्रचलित हुआ । २. बलराम की देवरूप-प्रसिद्धि संकर्षण नाम से हुई, इसलिए भी संकर्षण से मिलते-जुलते कृष्ण नाम की अपेक्षा वासुदेव नाम की लोकप्रियता बढ़ी होगी । ३. क्योंकि वसुदेव मूलतः शूरसेन प्रदेश के सात्वत वृष्णिवंशी ग्वालों के कुलदेवता थे, इसी से पितृ-वाचक वासुदेव नाम को आरम्भ में महत्ता प्राप्त हुई । बाद में गोपाल-कृष्ण की भी प्रतिष्ठा हो जाने पर कृष्ण नाम भी पूज्य बन गया ।

विष्णु-अवतार वासुदेव कृष्ण—वासुदेव कृष्ण को महाभारत से ही नारायण और विष्णु का अवतार माना जाने लगा था । महाभारत में अनेक स्थानों पर कृष्ण को नारायण कहा गया है । ईसा-पूर्व की पिछली कुछ शताब्दियों में नारायणीय या पंचरात्र नाम से एक उपासना-सम्प्रदाय प्रचलित था, जिसमें भक्त नारायण को परमेश्वर मानकर पूजते थे । मूलतः नारायण एक ऋषि थे । संभवतः उन्हीं के आधार पर नारायण देव की प्रतिष्ठा हुई । इसी प्रकार विष्णु मूलतः एक वैदिक देवता थे । सूर्य का नाम ही विष्णु था, जिसकी गणना ऋग्वेद के गौण देवताओं में थी । उत्तर-

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

वैदिक काल में ही विष्णु को महत्ता प्राप्त हुई और महाभारत के समय वह परमेश्वर रूप में प्रतिष्ठित हुए। बाद में कृष्ण को भी उनसे अभिन्न माना गया। इस प्रकार वासुदेव कृष्ण, नारायण और विष्णु एक हो गए। भागवत सम्प्रदाय में इनके अभिन्न रूप की प्रतिष्ठा रही। विष्णु और नारायण सर्वथा पर्यायवाची हो गये और वासुदेव कृष्ण को इनका अवतार माना जाने लगा। महाभारत के उत्तर अंशों में विष्णु के दशावतारों—वाराह, वामन, नृसिंह, कृष्ण, राम, परशुराम, हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि—का स्पष्ट उल्लेख है। भागवत धर्म या सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा उत्तर-महाभारत काल से गुप्तकाल के कुछ बाद तक रही। गुप्त काल में इस धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त था। गुप्तकालीन तथा बाद के अनेक राजा 'परम भागवत' कहलाते थे। इस समस्त काल में कृष्ण की अपेक्षा वासुदेव नाम ही अधिक प्रचलित रहा। कृष्ण की अपेक्षा गोविन्द, माधव, मधुसूदन नामों का देवरूप में अधिक उल्लेख मिलता है।

जैसाकि कहा जा चुका है, कृष्ण या कान्ह आरम्भ में कृष्ण का लौकिक प्रसिद्धि का नाम था। ईसा की आरंभिक तथा पूर्व की पहली-दूसरी शताब्दियों में आभीर जाति ने कृष्ण के गोपाल कृष्ण और ब्रजविहारी बाल-किशोर कृष्ण रूप को भी महत्ता प्रदान की। न केवल शूरसेन प्रदेश में अपितु पश्चिम, दक्षिण, पूर्व आदि सभी प्रदेशों में कृष्ण की बाल-किशोर लीलाएँ—उनके क्रीड़ा-कौतुक की मनोरंजक कथाएँ लोकप्रचलित हो गई थीं। पुराणों में इन लीलाओं की चरम साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई। पुराणों से पूर्व के साहित्य तथा प्राचीन मूर्तियों और शिलापट्टों पर उत्कीर्ण अनेक चित्रों से भी कृष्ण-लीलाओं की लोकप्रसिद्धि के प्रमाण मिलते हैं। ईसा की पहली शताब्दी का एक शिलापट्ट मथुरा से प्राप्त हुआ है, जिसमें नवजात शिशु कृष्ण को एक सूप में सिर पर रखे ले जाते हुए वसुदेव यमुना पार करते दिखाये गये हैं। इसी समय की मथुरा से ही प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्ण की कई मूर्तियाँ कलकत्ता संग्रहालय में हैं। पूर्व में बंगाल के पहाड़पुर नामक स्थान से गुप्तकालीन कुछ मिट्टी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें धेनकासुर बध, यमलार्जुन उद्धार, मुष्टिक चाणूर के साथ मल्लयुद्ध आदि के चित्र अंकित हैं। इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कृष्ण की बाल और किशोर-काल की ब्रजलीलाओं को अलौकिक रूप ईसा से कुछ पूर्व ही प्राप्त हो चुका था और ईसा की आरंभिक शताब्दियों में तो वे समूचे भारत में जन-आराधना का विषय बन चुकी थीं। दक्षिण भारत के बादामी के पहाड़ी किले पर कृष्ण-जन्म, पूतना-वध, कंस-वध आदि के अनेक दृश्य गुफाओं में उत्कीर्ण मिले हैं जिनका समय ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी है।

भागवत धर्म पर नारायणी पंचरात्र आदि वैष्णव भावनाओं, बौद्ध-जैन आदि धर्मों का भी किंचित् प्रभाव पड़ा। इस भागवत या वैष्णव धर्म का चरम विकास पुराण-काल में हुआ। महाभारतोत्तर काल में गीता के अनुसार भगवान् के अवतार लेने का यही हेतु माना जाता था कि वे धर्म की स्थापना, दुष्टों के नाश और साधुओं के परित्राण के लिए अवतार लेते हैं। पर पुराणकाल में अर्थात् ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी से वैष्णव भक्ति-पद्धतियों का दार्शनिक विकास होने लगा। नारदीय भक्ति-सूत्र और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

शांडिल्य भक्ति-पद्धति के प्रभाव से पुराणकाल में यह विश्वास प्रमुख हो गया कि भगवान् के अवतार का मुख्य हेतु भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अपनी लीलाओं का विस्तार करना और लीला-भजन-रसानन्द प्रदान करना है । इसी से कृष्ण के अनुरंजन-कारी बाल और किशोर रसिक रूप का महत्त्व बढ़ा और दास्य, नवधा आदि वैधी भक्ति-पद्धतियों के साथ-साथ माधुर्य भाव-भक्ति की प्रतिष्ठा हुई ।

इस नई भाव-भक्ति का विकास दक्षिण के आलवार संतों द्वारा ईसा की ५वीं शताब्दी से ९वीं शताब्दी के बीच हुआ । इन आलवारों के लगभग ४००० भक्तिपूर्ण गीतों का संग्रह 'प्रबंधम्' कहलाता है । नम्मलवार और अण्डाल आलवार बहुत प्रसिद्ध हैं । अण्डाल महिला आलवार थीं जिनके गीतों में मार्मिक अनुभूति पाई जाती है । राजस्थानी मीरां मानो बाद में उन्हीं का अवतार लेकर आईं । इन आलवारों ने कृष्ण नायक के प्रति अपनी नायिका आत्मा का आत्मसमर्पणकारी प्रेमभाव प्रदर्शित किया है । इन्होंने कृष्ण की बाललीलाओं और गोपी-प्रेम-लीलाओं का भी वर्णन किया । इन आलवार भक्तों ने दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति का खूब प्रसार किया । वैष्णव भक्ति के कई सम्प्रदाय विकसित हुए । दसवीं शताब्दी से चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी तक दक्षिण में कई आचार्य हुए, जिन्होंने अपने-अपने सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा की ।

वैष्णव भक्ति के विविध सम्प्रदाय—दक्षिण में रामानुज, निम्बार्क, विष्णुस्वामी तथा मध्व आचार्य नाम के चार प्रमुख आचार्यों ने क्रमशः श्री या रामानुज सम्प्रदाय, निम्बार्क या सनक सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय तथा ब्राह्म अथवा माध्व सम्प्रदाय की स्थापना की । वैष्णव भक्ति—विशेषतः कृष्ण भक्ति के प्रचार, प्रसार एवं दार्श-निक तथा व्यावहारिक विकास में इन सम्प्रदायों का महत्त्वपूर्ण योग है । उत्तर भारत में भी वैष्णवभक्ति – विशेषतः कृष्णभक्ति का प्रसार इन्हीं द्वारा संभव हुआ ।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, उत्तर भारत में गुप्तवंशीय राजाओं के समय (ई० सन् ४००-६००) में वैष्णव भक्ति और भागवत धर्म का खूब प्रचार हुआ । उत्तर भारत से ही यह भागवत धर्म और वैष्णवी भावना दक्षिण भारत में गई थी और वहाँ भी बड़ी प्रबलता के साथ विकसित हुई । गुप्तवंशीय राजाओं ने वैष्णवी-भावना के प्रचार में विशेष उद्योग किया था । गुप्त साम्राज्य के समाप्त होते ही उत्तरी भारत में बौद्ध और शैव धर्मों का प्रभाव बढ़ने लगा । हर्षवर्धन-जैसे कुशल शासकों ने बौद्ध-धर्म को अपना कर उसके प्रचार का मार्ग खोल दिया । ईसा की सातवीं और आठवीं शती के पश्चात् वैष्णव-धर्म-भावना उत्तरी भारत में कुछ दब-सी गई, परन्तु दक्षिण-भारत में, जहाँ उत्तर-भारत से ही ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में यह वैष्णवी धारा गई थी, इसका प्रचार बराबर बढ़ता गया । आलवार भक्तों ने दक्षिणी भारत में भागवत धर्म को पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचाया । आठवीं शताब्दी में स्वामी शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के धक्के से बौद्ध-धर्म के किले तो ढह गए परन्तु कुछ शैव-तत्त्वों और कुछ वैदिक बातों को अपना कर चलने वाले कई धार्मिक सम्प्रदाय चल पड़े ।

मध्ययुग में कोई सात-आठ सौ वर्षों तक उत्तर-भारत में धर्म का कोई एक निश्चित रूप नहीं रहा । कापालिकों, घोरपंथियों, तांत्रिकों और वाममार्गियों ने अपने

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बीभत्स कृत्यों द्वारा धर्म को बिल्कुल विकृत बनाया हुआ था। धर्म में अंधविश्वास बहुत बढ़ गया था। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों के समन्वित रूप का धर्म में बिल्कुल अभाव था।

उधर दक्षिण भारत में, जैसाकि कहा जा चुका है, वैष्णव-धर्म का प्रचार खूब था। आलवार भक्तों के उपरान्त दक्षिण भारत में कई आचार्य हुए जिन्होंने वैष्णवी-भक्ति-भावना को विशेष प्रश्रय दिया, अपने-अपने सिद्धान्तों-मार्गों की स्थापना की और शंकर के मायावाद का खंडन करके भक्ति को प्रमुखता दी। इन्हीं आचार्यों द्वारा वैष्णवी भावना का उत्तर-भारत में पुनरुत्थान हुआ। "भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर-भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय-क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।"

ग्यारहवीं शती में श्री रामानुजाचार्य ने अपने श्री-सम्प्रदाय की स्थापना की। शास्त्रीय पद्धति से सगुण वैष्णवी भक्ति का निरूपण करके इन्होंने अपने विशिष्टाद्वैत-वाद सिद्धान्त का प्रचार किया। इन्हीं की शिष्य-परम्परा में स्वामी रामानन्द हुए हैं, जिन्होंने विष्णु के रूप राम की प्रतिष्ठा की। ये दक्षिण-भारत से उत्तर-भारत में रहने लगे और यहाँ अपने रामानन्दी संप्रदाय की स्थापना की। कबीर, रैदास, तुलसीदास आदि इनके अनेक शिष्य हुए। इनका व्यक्तित्व अद्‌भुत था। इन्होंने जात-पाँत आदि के भेद-भाव को भी भक्ति के क्षेत्र से मिटाने का प्रयत्न किया। इनके द्विमुखी व्यक्तित्व से ही राम के दो रूपों की उपासना का चलन उत्तर-भारत में हुआ। तुलसीदास जी ने विष्णु-अवतार राम को सगुण-भक्ति का आलम्बन बनाया और कबीर आदि सन्त-भक्तों ने निर्गुण राम की उपासना का प्रवर्त्तन किया। इस प्रकार राम-भक्ति और निर्गुण-सन्त-धारा—भक्ति की दो प्रमुख धारायें मध्य युग के हिन्दी-साहित्य में प्रवाहित हुईं। निर्गुण धारा के निर्माण में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी योग दिया।

बारहवीं शताब्दी में दक्षिण में दूसरे प्रमुख आचार्य निम्बार्काचार्य हुए। ये तेलगू प्रदेश से आकर वृन्दावन में बस गए थे। 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव इन्हीं के शिष्य थे। इन्होंने राधाकृष्ण की उपासना का प्रवर्त्तन किया और अपना द्वैताद्वैत-वादी सिद्धान्त-मार्ग चलाया। इन्हीं से प्रभावित स्वामी हरिदास ने सोलहवीं शती में अपने हरिदासी या सखी सम्प्रदाय की स्थापना की।

तीसरे प्रसिद्ध आचार्य स्वामी मध्वाचार्य (सन् ११९७—१२७६) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया। इन्होंने भी वैष्णव भक्ति को विशेष प्रश्रय दिया। उत्तर-भारत में राधा-बल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक गोसाईं हितहरिवंश (जन्म सन् १५०२ ई०) पर इनका भी प्रभाव पड़ा।

चौथे आचार्य विष्णुस्वामी हुए जिन्होंने अद्वैतवाद को माया से रहित मानकर शुद्धाद्वैतवाद की नींव डाली। कहा जाता है कि ये प्रसिद्ध महाराष्ट्रभक्त ज्ञानेश्वर महाराज के गुरु थे। बल्लभ सम्प्रदायी ग्रन्थों से तथा किंवदन्तियों से यह पता चलता है कि श्री बल्लभाचार्य जी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्‌दी पर बैठे और उन्होंने इसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर अपने सिद्धान्तों को निर्धारित किया।

Accession No. 12222
Class No.............
Book No.............
CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

यह भी जनश्रुति है कि महाराष्ट्र सन्त श्री ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, त्रिलोचन, हीरालाल और श्रीराम विष्णुस्वामी-मतावलम्बी थे। महाराष्ट्र में प्रचार पाने वाला भागवत-धर्म, जो पीछे 'वारकरी' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नामदेव आदि उक्त भक्त थे, विष्णुस्वामी मत का ही रूपान्तर है। विष्णुस्वामी के कृष्ण तथा बारकरी सम्प्रदाय के विट्ठल तथा विठोवा में समानता है।

इस प्रकार उपर्युक्त चारों आचार्यों के प्रभाव और प्रेरणा के फलस्वरूप भक्ति के अनेक सम्प्रदायों – रामानन्दीय सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय (गौड़ीय सम्प्रदाय), राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी या सखी सम्प्रदाय (टट्टी सम्प्रदाय) तथा श्री बल्लभाचार्य जी का पुष्टि मार्ग आदि—द्वारा भक्ति का, विशेषकर कृष्ण-भक्ति का एक सजीव वातावरण समस्त भारत में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार के मध्ययुगीन वातावरण में परम भक्त सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास आदि के काव्य की सरस स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई। इन सम्प्रदायों का एक-दूसरे पर प्रभाव पाया जाता है। कृष्ण भक्ति के इन विविध सम्प्रदायों पर हम आगे विस्तृत प्रकाश डालेंगे।

राधा : उद्भव और स्वरूप-विकास

कृष्ण का लौकिक ऐतिहासिक और अलौकिक परमेश्वर अवतारी रूप तो अत्यन्त प्राचीन—ईसा से कम-से-कम एक हजार वर्ष पूर्व का है, पर राधा और कृष्ण की युगल अवतारणा ईसा के आरम्भ या कुछ बाद में ही हुई। महाभारत, बौद्ध जातकों तथा जैनागम ग्रन्थों में वर्णित मूल कृष्ण-कथा में राधा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। कृष्ण के रसिक श्रृंगारी रूप का विकास बाद में लगभग ईसा के आरम्भकाल या कुछ पूर्व हुआ। साहित्य में प्राकृत की रचना 'गाहा सतसई' में ही सर्वप्रथम राधा का उल्लेख मिलता है। पहली शती ई० की इस रचना में गोपीनाथ-कृष्ण की श्रृंगारी रसिकता के कई प्रसंग कई गाथाओं में पाये जाते हैं। एक गाथा में राधा का भी उल्लेख मिलता है—

मुहमारूएण तं कण्ह गोरअं राहिआए वअणेन्तो।
एताएं बलवीणं अण्णनं पि गोरअं हरसि। —गाहा सतसई १।२९।।

अर्थात् "हे कृष्ण, तुम मुखमारुत से राधा के मुख पर लगे गोरज का अपनयन करके इन अन्य बल्लभियों एवं नारियों का गौरव हर रहे हो।"

एक अन्य गाथा में नृत्य में संलग्न एक गोपी दूसरी गोपी के कपोल पर पड़ते हुए कृष्ण के प्रतिबिम्ब का चुम्बन करके अपना प्रेम जताती है। एक और गाथा में कृष्ण की अचगरी का वर्णन है : यशोदा कहती है, मेरा लाल बालक है, इस पर ब्रज-बालाएँ कृष्ण के मुख की ओर निहार कर ओट में हँसती हैं।

इन गाथाओं से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कृष्ण के लौकिक-अलौकिक श्रृंगारी रसिक रूप—गोपीवल्लभरूप—का पूर्ण प्रचलन लोक-जीवन और श्रृंगार-काव्य में हो चुका था। गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम की व्यंजना या राधा के अलौकिक रूप का स्पष्ट प्रकाशन कुछ बाद में हुआ। विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण और यहाँ तक कि भागवतपुराण में भी राधा का अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। विष्णुपुराण

Library Govt. College for Women
Nawakadals Srinagar.

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

में एक विशेष गोपी का उल्लेख अवश्य हुआ है जो रास-प्रसंग में कृष्ण-द्वारा पुष्पों से अलंकृता हुई थी और जिसके द्वारा दूसरे जन्म में विष्णु अभ्यर्चित हुए थे :

अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलंकृता ।
अन्य जन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो यया ।। —विष्णुपुराण

संभवत: इसी आधार पर भागवतपुराण के दसवें स्कंध में रास-प्रसंग में एक विशेष गोपी का उल्लेख हुआ है, अपनी जिस प्रियतमा को लेकर कृष्ण गायब हो जाते हैं और उसके साथ विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं । अन्य गोपियाँ कृष्ण-विरहातुर हो जब उनके पद-चिह्न ढूंढ़ लेती हैं तो उस सौभाग्यवती को सराहती हुई कहती हैं : **'अनयाराधितो नूनं भगवान् हरीरीश्वरः'** अर्थात् ''इस बाला द्वारा निश्चय ही भगवान्, ईश्वर हरि विशेष आराधित हुए हैं, इसीलिए गोविन्द ने हमें छोड़कर इस एकान्त स्थान में इसके साथ प्रीति की ।''

उपर्युक्त संदर्भ में 'अनयाराधितो' शब्द से ही कुछ विद्वान् राधा के उद्भव की कल्पना करते हैं । हो सकता है परवर्ती पुराणों—'ब्रह्मवैवर्तपुराण' आदि —में राधा की प्रचुर चर्चा का आधार यही संकेत ही रहा हो । पर सम्पूर्ण कृष्ण-साहित्य से एक बात स्पष्ट प्रतीत होती है; वह यह कि गोपी-बल्लभ कृष्ण की अवतारणा के साथ ही उनके एक विशेष गोपी के साथ सम्बन्ध की बात भी आरम्भ से प्रचलित हो गई थी, जिसे अन्य गोपियों पर वरीयता प्राप्त थी । 'हाल सतसई' में उस विशेष गोपी का नाम स्पष्टत: राधा बताया गया है । अत: राधा की ऐतिहासिक विद्यमानता चाहे संदिग्ध हो, पर यह तथ्य है कि लोक-परम्परा ने कृष्ण की विशेष प्रिया के रूप में राधा को ईसा के आरंभ से ही ग्रहण कर लिया था । विद्वानों का अनुमान है कि राधा गोपाल कृष्ण की तरह आभीरों की कुलदेवी या प्रेमदेवी रही होगी । हमारा निश्चित मत है कि आरंभ में राधा कृष्ण की विशेष प्रिया के रूप में ही लोक-अनुश्रुति द्वारा ग्रहण हुई, बाद में उसे आराध्या का दर्जा प्राप्त हुआ । प्राचीन मूर्तियों या शिलापट्टों में यद्यपि सातवीं-आठवीं शताब्दी से पूर्व राधा के कोई चिह्न नहीं मिलते; सातवीं-आठवीं शताब्दी का पहाड़पुर (बंगाल) से प्राप्त एक मूर्त्तिफलक कृष्ण के साथ एक नारी को भी दर्शाता है जो संभवत: राधा ही होगी, तथापि कृष्ण की विशेष प्रियतमा की धारणा ईसा के आरंभ काल में ही हो चुकी थी । तमिल की 'शिलप्पविकारम्' (दूसरी शती ई०) रचना में उल्लेख मिलता है कि उस समय कन्नन (कृष्ण)-मन्दिरों में कृष्ण और नप्पिन्नै की युगल मूर्ति स्थापित होती थी । आलवारों से पूर्व रचित ईसा की आरंभिक शताब्दियों में तमिल साहित्य में कई जगह कन्नन-नप्पिन्नै (कृष्ण-राधा) की प्रेम-लीलाओं का उल्लेख मिलता है ।

तमिल प्रदेश के आलवार संतों के गीतों में भी यह विशेष गोपी 'नप्पिन्नै' नाम से व्यक्त हुई है । नप्पिन्नै नामक इस गोपी की उसी प्रकार प्रधानता वर्णित हुई है जैसे उत्तर भारत के कृष्ण-भक्ति-काव्य में राधा की । आलवार संतों ने नाप्पिन्नाइ को भगवान् कृष्ण की प्रियतमा एवं विष्णु की अर्द्धांगिणी लक्ष्मी का अवतार माना है । ८वीं शताब्दी से संस्कृत-प्राकृत के अन्य साहित्य में भी राधा का स्पष्ट उल्लेख मिलना

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आरंभ होता है। भट्टनारायण (८वीं शती ई०) ने अपने 'वेणी संहार' नाटक के नांदी श्लोक में रास-प्रसंग में राधा के कुपित होने और कृष्ण-द्वारा मनाने का उल्लेख करते हुए कहा है कि "इस प्रकार का भगवान् का अनुनय सज्जनों की रक्षा करे।"

इसी प्रकार आठवीं शती के प्राकृत महाकाव्य 'गडड़वहो' (वाक्पतिराज कवि-विरचित) के मंगलाचरण में भगवान् कृष्ण की स्तुति करता हुआ कवि कहता है— "राधा-द्वारा कृष्ण के वक्ष-स्थल पर बनी कौस्तुभमणि की किरणों जैसी चमकती हुई नखक्षत-रेखायें दुःखों को दूर करें।" 'ध्वन्यालोक' (९वीं शती) तथा 'कवीन्द्र वचन-समुच्चय' जैसे कई अन्य ग्रंथों में भी ८वीं-९वीं शताब्दी में रचित कृष्ण-राधा-प्रेम-लीलाओं-सम्बन्धी कुछ श्लोक संगृहीत हैं। दसवीं शताब्दी के मालवाधीश वाक्पति मंजु परमार के एक अभिलेख में कहा गया है कि "जिन भगवान् कृष्ण को (राधा की तुलना में) लक्ष्मी के वदनेन्दु से सुख नहीं मिलता तथा जिन्हें अपनी नाभि का कमल (राधा के मुख-कमल के अभाव में) शांति प्रदान नहीं करता, उन राधा-विरहातुर मुरारिका कंपित वपु तुम्हारी रक्षा करे।" (एपिग्राफिका इंडिका, २३/१०८/३)

राधा के उद्भव का यही स्रोत है। अनुमान यही है कि कृष्ण के गोपी-वल्लभ रूप में एक विशेष गापी-प्रिया की कल्पना एक ओर तो भावुक कवियों को रुचिकर प्रतीत हुई होगी,दूसरी ओर बाद में भक्तजनों ने विष्णु के अवतार कृष्ण के साथ राधा के लक्ष्मी-रूप अवतार की धारणा बना ली। तमिल भक्तों और आलवार संतों ने उस विशेष प्रिया को 'नाप्पिन्नाइ' नाम दिया। प्राकृत-संस्कृत साहित्य में राधा नाम प्रचलित रहा और उसी के आधार पर हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं और उनके साहित्य में राधा की प्रतिष्ठा हुई। राधा के व्यक्तित्व का विस्तृत चित्रण सर्वप्रथम 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में मिलता है। इसके अतिरिक्त 'देवी भागवत पुराण', 'राधातंत्र', 'राधिकोपनिषद्' आदि अन्य पुराणों तथा संस्कृत रचनाओं में राधा की प्रतिष्ठा इष्ट-देवी के रूप में हुई। बारहवीं-तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के संस्कृत-बंगला-हिन्दी कवियों—क्षेमेन्द्र, जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति आदि—ने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीलाओं का विस्तृत गान किया। निम्बार्क, चैतन्य, बल्लभ, राधाबल्लभीय, हरिदासी आदि कई वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की उपासना उत्तरोत्तर महत्त्व पाती गई, यहाँ तक कि श्री वंशीअलि के ललित सम्प्रदाय में राधा का महत्त्व कृष्ण से भी बढ़ गया। वहाँ श्री राधा ही परब्रह्म हैं, कृष्ण इन राधा के परम भक्त तथा सेवक हैं। ललिता आदि सखियों तथा ललित सम्प्रदायी भक्तों के लिए राधा ही पति और सर्वस्व बन गई। इन विभिन्न सम्प्रदायों में राधा के रूप-स्वरूप पर हम आगे विस्तृत प्रकाश डालेंगे।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कृष्ण-काव्य-परम्परा और विकास

प्राचीन परम्परा—पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि कृष्ण का उदय और विकास भारतीय जन-संस्कृति के अनेक स्रोतों से हुआ—वैदिक-अवैदिक, लौकिक-अलौकिक, भक्ति-शृंगार, इतिहास-पुराण, साहित्य-लोकगीत आदि अनेक धाराओं से कृष्ण और कृष्णाख्यान का सम्बन्ध है। कृष्णोदय के आरम्भ-काल से वर्तमान काल तक कृष्ण के दोनों ही रूप—लौकिक एवं अलौकिक--इस देश के जन-जीवन एवं साहित्य में समानान्तर प्रचलित रहे हैं। 'महाभारत', जातक कथाओं, जैनागमग्रंथों, 'गाथा सप्तशती' आदि संस्कृत-प्राकृत के प्राचीन ग्रंथों में जहाँ अधिकतर कृष्ण का लौकिक चरित एवं लौकिक शृंगारी रूप प्रस्फुटित हुआ, वहाँ 'श्रीमद्भगवद्गीता', हरिवंशपुराण, भागवतपुराण आदि पुराण-साहित्य, नारद-पंचरात्र आदि संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों में कृष्ण के अवतारी रूप तथा कृष्ण की अलौकिक लीलाओं का वर्णन हुआ है। संस्कृत साहित्य में ईसा-पूर्व रचित भास के नाटकों ('बालचरितम्' में बाल-कृष्ण की लीलाओं का चित्रण भास ने किया), 'शिशुपाल वध' आदि परवर्ती संस्कृत काव्यों में भी कृष्ण के जीवन और कार्यों का वर्णन पाया जाता है। माधुर्य के उत्कट उद्रेक ने जहाँ एक ओर उन्हें अलौकिक प्रेम और भक्ति का आलम्बन बनाया, वहाँ दूसरी ओर लौकिक प्रेम के भी वे सर्वव्यापी रसिक नायक बन गए। लोक-जीवन में भी प्रत्येक नायक कान्ह तथा प्रत्येक नायिका राधा या गोपी बन गई। कुछ विद्वानों का विचार है कि कृष्ण का यह लौकिक रूप रीतिकाल में ही लोकजीवन तथा काव्य में प्रचलित हुआ और हिन्दी के रीतिकालीन कवियों के लिए कृष्ण-चित्रण 'राधा माधव सुमिरिन को बहानो' बन गया। किन्तु हमारा निवेदन है कि यह 'बहाना' तो 'गाथा-सप्तशती' में भी स्पष्ट प्रतीत होता है। प्राकृत की गाथाओं में कृष्ण के शृंगारी रूप की स्पष्ट अवतारणा हो गई थी। बाद में राधा की कल्पना के योग ने उसमें और भी माधुर्य भर दिया। जयदेव के 'गीतगोविन्द' में यही 'बहाना' कृष्ण-राधा-प्रेम के रूप में अपनी सम्पूर्ण संगीत-माधुरी एवं काव्यचातुरी के साथ प्रकट हुआ। जयदेव से भी सौ वर्ष पूर्व महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने 'दशावतार चरित' काव्य में सम्पूर्ण कृष्ण-चरित को मार्मिक काव्यात्मक शैली में प्रकट किया।

कृष्ण-काव्य की परम्परा संस्कृत-प्राकृत से होती हुई अपभ्रंश में भी आई। ब्रजभाषा की जननी शौरसेनी अपभ्रंश में कृष्ण-सम्बन्धी अनेक काव्य रचे गये। पुष्पदंत के 'महापुराण' में कृष्ण का विस्तृत चित्रण हुआ है। यद्यपि कवि का दृष्टि-कोण कृष्ण-भक्तिपरक प्रतीत नहीं होता, तथापि भागवत के आधार पर ही कृष्ण की गोवर्धन-लीला, ऊखल-बंधन, कालिय दमन, पूतना-वध आदि लीलाएँ प्रस्तुत की गईं हैं। गोपियों की प्रेम-विह्वलता का भी वैसा ही मार्मिक चित्रण हुआ है जैसा भागवत-पुराण में है। आश्चर्य की बात यह है कि जैन कवि होने के कारण पुष्पदंत ने कृष्ण-भक्ति का कोई भाव स्पष्टतः प्रकट नहीं किया तथापि जन-जीवन में प्रचलित कृष्ण के लिए हरि, मुरारि, गोपाल, प्रभु, मधुसूदन आदि सम्बोधनों का निस्संकोच प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि ईसा की दसवीं शताब्दी में, जयदेव के

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

'गीत गोविन्द' की रचना से प्राय: दो सौ वर्ष पूर्व भी भारतीय लोक-जीवन में कृष्ण के लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों का पूर्ण मिश्रण था। मिश्रण की यह प्रक्रिया कृष्णोदय से ही प्रारंभ हो गई थी। लौकिकता-अलौकिकता का यह मिश्रण ईसा से पूर्व ही होना आरम्भ हो गया था। महाभारत, भास के नाटकों तथा गाथा सप्तशती आदि प्राचीन संस्कृत-प्राकृत साहित्य में भी इस मिश्रण के पूरे संकेत हमें मिलते हैं।

अपभ्रंश के और भी कई जैन कवियों ने कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ कीं, पर कृष्ण को महापुरुष के रूप में ही इन कवियों ने अवलोकित किया। प्रद्युम्नचरित-सम्बन्धी काव्यों में भी कृष्णाख्यान प्रकट हुआ है। अपभ्रंश के फुटकर दोहों में भी कोई-कोई दोहा कृष्ण-प्रेम-संबंधी है। कृष्ण-प्रेम का यह रूप वही है जो 'गाथा सप्तशती, आदि मुक्तक रचनाओं में प्रकट हुआ था।

सूर-पूर्व हिन्दी कृष्ण-काव्य-परम्परा

हिन्दी में कृष्ण-काव्य की परम्परा सूरदास आदि अष्टछापी कवियों से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व १४वीं शताब्दी में प्रचलित हो चुकी थी। हिन्दी की सभी उपभाषाओं में कृष्ण-काव्य रचा गया। प्राय: विद्वानों में यह भ्रांति पाई जाती है कि कृष्ण-काव्य की रचना ब्रज भाषा में ही हुई। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रज भाषा में कृष्ण-काव्य की सर्वाधिक रचना हुई, किन्तु हम देखते हैं कि मैथिली, अवधी आदि अन्य भाषाओं में भी कृष्ण-काव्य की समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। १४वीं शताब्दी से पुरानी हिन्दी, ब्रज, मैथिली तथा अवधी में कृष्ण-काव्य का प्रणयन होने लगा था। जयदेव की परंपरा में विद्यापति ने मैथिली में कृष्ण-काव्य का ऐसा मधुर साहित्यिक रूप प्रस्तुत किया जो सूरदास आदि आगामी ब्रज-कवियों के लिए अनुकरणीय बना। विद्यापति और उनकी मैथिली कृष्ण-काव्य-परम्परा को हम आगे अलग अध्याय में विस्तारपूर्वक अध्ययन का विषय बनायेंगे। यहाँ यही निवेदन करना है कि कृष्ण-काव्य की परम्परा विविध विभाषाओं में अनेक रूपों में १४वीं शताब्दी से ही प्रचलित हो चुकी थी :

१. मुक्तक कृष्ण-गीत-काव्य की लौकिक शृंगारी परम्परा मैथिली में विद्यापति से आरम्भ और पुष्ट हुई।

२. पुरानी ब्रजभाषा या पिंगल भाषा में कृष्ण-भक्तिपरक फुटकर छन्दों की रचना भी १४वीं शताब्दी या उसके भी पहले होने लगी थी, इसका प्रमाण 'प्राकृत-पैंगलम' में प्राप्य कुछ दोहे हैं। 'प्राकृतपैंगलम्' के स्तुतिपरक पद्यों में कृष्ण की वंदना के भी दो-चार पद्य मिलते हैं। एक पद्य उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है :

जिणि कंस विणासिअ कित्ति पयासिअ,
मुट्ठि अरिट्ठ विणास करे, गिरि हत्थ धरे ॥
जमलज्जुण भंजिय पय भर गंजिय,
कालिय कुल संहार करे, जस भुवण भरे ॥
चाणूर विहंडिअ, णिय कुल मंडिअ,
राहा मुख महु पान करे, जिमि भमर वरे ॥ —प्राकृत पैंगलम्

यहाँ शौरसेनी अपभ्रंश से पिंगल अर्थात् पुरानी ब्रजभाषा के विकसमान रूप का

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

स्पष्ट परिचय मिल रहा है । साथ ही इस पद्य में नारायण के रूप में कृष्ण की लीला-महिमा का गान हुआ है । कृष्ण के अलौकिक परमात्म रूप के साथ ही राधा-मुख-मधु का पान करने वाले कृष्ण के शृंगारी रूप का भी प्रकाशन हुआ है जो इस बात का सबूत है कि सूरदास आदि अष्टछापी सम्प्रदायी कवियों से ही नहीं, विद्यापति और बंगला के चण्डीदाससे भी पूर्व पुरानी हिन्दी में कृष्ण मधुर भाव के आलम्बन बन चुके थे।

३. ब्रजभाषा में कृष्णाख्यानक प्रबन्ध काव्यों की रचना-परम्परा भी हमें १४वीं शताब्दी से उपलब्ध होती है । सर्वप्राचीन प्राप्य रचना सधार अग्रवाल-कृत 'प्रद्युम्न-चरित' है जो १३५४ ई० में रची गई थी । यद्यपि जैन कवि होने के कारण, इसमें कृष्ण-भक्ति का भाव नहीं है, तथापि इसमें रुक्मिणी-विवाह, सत्यभामा-रुक्मिणी-विवाद, कृष्ण-प्रद्युम्न-द्वन्द्व आदि कई प्रसंग कृष्ण से सम्बन्धित हैं । सूरदास से लगभग सौ वर्ष पूर्व विष्णुदास (रचनाकाल १४३५ ई०) ने 'रुक्मिणी मंगल', 'स्नेह-लीला' तथा 'महा-भारत कथा' नामक काव्यों की रचना की, जिनमें कृष्णभक्ति का पूर्ण प्रकाशन हुआ है । भक्ति के साथ-साथ शृंगार का वही समन्वय विष्णुदास की 'रुक्मिणी मंगल' और 'स्नेह-लीला' में विद्यमान है, जो आगे के सूरदास, नंददास आदि कृष्ण-भक्त कवियों में पाया जाता है । इस दृष्टि से विष्णुदास एक परम्परा-निर्माता के रूप में सूरदास आदि के लिए प्रेरणा-स्रोत बने । नंददास आदि बीसियों कवियों की 'रुक्मिणी मंगल' रचनाओं की अग्रजा विष्णुदास की 'रुक्मिणी मंगल' है, इसमें संदेह नहीं । हिन्दी में भ्रमरगीत-काव्य की परम्परा का भी पूर्ण श्रेय सूरदास को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि विष्णुदास अपनी 'स्नेह-लीला' में यह प्रसंग सूर से १०० वर्ष पूर्व प्रस्तुत कर चुके थे। कृष्णाख्यानक खण्डकाव्यों का विस्तृत अध्ययन हमने अन्यत्र किया है ।

४. संगीतज्ञ कवियों और गायकों को कृष्ण-काव्य में जो अपूर्व रस-माधुरी और संगीत-लहरी प्राप्त हुई, उससे कृष्ण-काव्य उनका कंठहार बन गया । जयदेव, विद्या-पति की सरस पदावली की परम्परा में जो सरस कृष्ण-काव्य रचा गया, वह न केवल संगीतज्ञ कवियों और गायकों का कंठहार बना, अपितु गोपाल नायक, बैजूबावरा आदि प्रसिद्ध गायकों ने स्वयं भी अपनी कवि-प्रतिभा से कृष्ण-प्रेम की स्वर-लहरी बहाई । बैजूबावरा के जो पद 'रागकल्पद्रुम' में मिलते हैं, उनमें से कई कृष्ण-सम्बन्धी हैं । कृष्ण-प्राकट्य का एक पद देखिए :

आंगन भीर भई ब्रजपति के आज नंद महोत्सव आनन्द भयो ।
हरद दूब दधि अक्षत रोरी ले छिरकत परस्पर गावत मंगलाचार नयो ।
ब्रह्मा ईस नारद सुर नर मुनि हरषित विमानन पुष्प बरस रंग ठयो ।
धन-धन बैजू संतन हित प्रकट नंद-जसोदा ये सुख जो दयो ।

बैजू के पदों में कृष्ण-लीला के कई रूप पाये जाते हैं । गोपी-प्रेम, विरह, रास आदि सभी पक्षों को उन्होंने छूआ है । एक प्रेम-गीत और देखिए, सूर-पूर्व पद-परम्परा का कितना स्पष्ट प्रमाण है :

प्यारे बिनु भर आए दोउ नैन ।
जबतें श्याम गवन कीनो गोकुल तें नाहीं परत री चैन ॥

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

लगे न भूख न प्यास न निद्रा मुख आवत नहिं बैन।
बैजू प्रभु कोई आन मिलावै वाकी बलिहार चरन रैन ।।

५. सूर से पूर्व कुछ अन्य भाषा-भाषी कवियों के रचे भी कुछ फुटकर पद्य प्राप्त हुए हैं। असमिया के आदि कवि शंकरदेव ने ईसा की पन्द्रहवीं शती के अन्त में ब्रजमण्डल की यात्रा की थी। कहते हैं कि इसी यात्रा के दौरान उन्होंने ब्रजभाषा में कुछ पद रचे थे जिनमें अधिकांश कृष्ण-गोपी-प्रेम-सम्बन्धी हैं। एक नमूना देखिए :

गोपिनी प्रान काहेनो गयो रे गोविन्द।
हासु पापिनी पुतु पेखत्रो नाहिं आर मोहिं बदन अरविन्द ।।
कवन भाग्यवती भयो रे सुपरभात आजु भेटन मुख चांदा।
उगत सूर दूर गयो रे गोविन्द भयो गोप बंधु आन्धा ।।

सूर के पूर्व गुजरात के भालण कवि ने कृष्ण-लीला-सम्बन्धी कुछ पद ब्रजभाषा में रचे थे। उनके जो छः पद इस समय प्राप्य हैं उनमें कृष्ण की बाल-लीला, तथा विरह का वर्णन है। बाल-वर्णन का एक पद देखिए :

कौन तप कीनो री माई नंद घरणी।
ले उछंग हरिकूं पय पावत मुख चुम्बन मुख भीनो री ।।
तृप्त भए मोहन जू हसत है तब उमगत अधर ही फीनो री।
यशोमती लटपट पूछन लागी वदन खेंचि तब लीनो री ।।
अन्तरिक्ष सुर इन्द्रादिक बोलत ब्रज जन को दुख खीनो री।
यह रससिंधु गान करि गाहत है भालण जन मन भीनो री ।।

भाषा-शैली में सूर के पदों की कुछ समानता होते हुए भी भालण के पद सूर-जैसी भाव और कला का उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सके। केशव कायस्थ नामक एक और गुजराती कवि ने अपने गुजराती 'कृष्ण-क्रीड़ा' काव्य में दो-तीन पद ब्रजभाषा में भी रचे हैं जिनमें राधा के मान, कृष्ण की माखन-चोरी का वर्णन है।

सूर से पूर्व नामदेव जैसे महाराष्ट्र संतों ने ब्रजभाषा में अपनी वैष्णवी भक्ति भावना प्रकट की। नामदेव मूर्त्त उपासना को त्यागकर अमूर्त्तोपासक हो गए थे, पर उनकी वैष्णव संत-परम्परा में कई महाराष्ट्र भक्त-कवियों ने मूर्त्त साधना का मार्ग अपनाये रखा। सूर के समकालीन भानुदास ऐसे ही महाराष्ट्र भक्त थे जिन्होंने ब्रज-भाषा में कृष्ण-भक्ति-काव्य की सरस रचना की। इन अहिन्दी भाषा-भाषी कवियों की ब्रजकाव्य-रचना से जहाँ ब्रजभाषा की व्यापक मान्यता का तथ्य प्रकट हुआ है, वहाँ यह भी प्रमाणित हो जाता है कि सूरदास से पूर्व समूचे भारत की प्रायः सभी भाषाओं और बोलियों में कृष्ण-लीलाओं के गान होने लगा था। वास्तव में कृष्ण हिन्दू धर्म और संस्कृति के सर्वमान्य आलम्बन बन गए थे। महाराष्ट्र भक्त भानुदास का एक पद देखिये : कवि ने प्रभाती-वर्णन में वात्सल्य का सुन्दर चित्रण किया है :

उठहु तात मात कहे रजनी को तिमिर गयों, मिलत बाल सकल ग्वाल सुन्दर कन्हाई,
जागहु गोपाल लाल जागहु गोविन्द लाल जननी बलि जाई ।।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

मुंह तें पट दूर कीजो जननी को दरस दीजौ, दधि खीर मांग लीजो खांड और मिठाई,
झपत झपत श्याम राम सुन्दर मुख तब ललाम, थाती की छूट कछु भानुदास भाई ।।

६. नामदेव, कबीर, रैदास आदि संत कवियों ने अपने भक्ति-पद्यों में राम की तरह कृष्ण-नाम को भी अपनी आराधना का विषय बनाया है। इसमें संदेह नहीं कि ये संत कवि अवतारवाद के विरुद्ध थे और अमूर्त्तोपासक थे, किन्तु उन्होंने कृष्ण-नाम को परब्रह्म निराकार रूप में अवश्य भजा है। अत: उनकी निर्गुण-निराकार उपासना ही परब्रह्म कृष्ण की उपासना है। उसे हम चाहे सगुण मूर्त्त भक्ति-साधना में स्थान न दें, पर है वह कृष्ण परब्रह्म की भक्ति ही। इस विनयपूर्ण निराकार भक्ति का प्रभाव सूर, मीरा आदि के विनय-पदों में ढूँढ़ा जा सकता है। इन संतों ने अपने परब्रह्म को माधव, मुरारि, गोविन्द आदि कृष्ण-नामों से अनेक पदों में सम्बोधित किया है। नामदेव की माधव से यह होड़ देखिए, सूर के तत्संबंधी पदों से इसका साम्य कितना स्पष्ट है :

बदहु किन होड़ माधव मोसिउ ।
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर खेल परिउ है तों सिउं ।।

इसी प्रकार कबीर के गोविन्द-शरण-ग्रहण के इस पद का सूर के विनय-संबंधी कई पदों से भाव-साम्य है :

गोविन्द तुम थें डरपौं भारी ।
सरणाई आयो क्यूं गहिए यह कौनु बात तुम्हारी ।।
तारण तरण तरण तू तारण और न दूजा जानौं ।
कहैं कबीर सरनाई आयौं आन देव नहिं मानौं ।।

रैदास तो उस सौंदर्य-मूर्ति—(माधव) पर न्यौछावर हैं। वे उस चन्द के चकोर हैं और अपना अटूट सम्बन्ध जताते हुए कहते हैं कि हे माधव, यदि तुम इस प्रेम-सम्बन्ध को तोड़ भी दो, तो भी हम नहीं तोड़ सकते, क्योंकि तुमसे तोड़ने पर भला हमारा और कौन है जिससे सम्बन्ध जोड़ें ?—

जउ तउ गिरिवर तउ हम मोरा ।
जउ तउ चंद तउ हम भये चकोरा ।।
माधवे तुम तोरहु तउ हम नहिं तोरहिं ।
तुम सिउं तोरि कवन सिउं जोरहिं ।।

हिन्दी साहित्य के पाठकों को बताने की आवश्यकता नहीं कि रैदास की उपर्युक्त पंक्तियों से मिलती-जुलती पंक्तियाँ मीरा के पद की हैं।

उपर्युक्त सोदाहरण विवेचन से स्पष्ट हुआ होगा कि हिन्दी में कृष्ण-काव्य, कृष्ण-भक्ति-काव्य तथा कृष्णाख्यानक काव्य की परम्परा सूरदास आदि अष्टछापी कवियों से बहुत पुरानी है। कृष्ण के लौकिक-अलौकिक रूप एवं चरित तथा भक्ति एवं शृंगारी आदि सभी रूपों को हिन्दी कवियों ने अपनी कविता का विषय बना लिया था। सूरदास आदि से पूर्व का यह कृष्ण-काव्य सब प्रकार की साम्प्रदायिक भावना से रहित है। प्राचीन पिंगल ब्रजभाषा और मैथिली में कृष्ण-काव्य की परम्परा १४वीं

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

शताब्दी से ही प्रचलित हो गई थी। अवधी और खड़ी बोली में उसकी रचना कुछ बाद को हुई।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० दीनदयाल गुप्त आदि हिन्दी के मूर्धन्य विद्वानों की यह पूर्वधारणा अब परिवर्तित होनी चाहिए कि सूरदास आदि अष्टछापी कवियों से पूर्व कृष्ण-भक्ति काव्य ब्रजभाषा में नहीं रचा गया। आज से लगभग ३२ वर्ष पूर्व डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने कहा था—"सोलहवीं शताब्दी के पहले भी कृष्ण काव्य लिखा गया था, लेकिन वह सबका सब या तो संस्कृत में है, जैसे जयदेव-कृत गीत-गोविन्द या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, जैसे मैथिल-कोकिल-कृत पदावली। ब्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।"[1] और डॉ० दीनदयाल गुप्त ने भी अपने प्रसिद्ध शोधप्रबंध में स्थापित किया था कि "भाषा की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के पहले ब्रजभाषा में रचना करने वाले, किसी भी कवि का परिचय इतिहास नहीं देता। नामदेव की ब्रजभाषा भी परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है। इस प्रकार अष्टछाप का प्रथमवर्ग (सूरदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास और कृष्णदास) ही ब्रजभाषा का आदि कवि-वर्ग है और उसमें भी सबसे अधिक श्रेय सूरदास को है।" इसके साथ ही डॉ० दीनदयाल गुप्त ने सूरादि अष्टछापी कवियों से पूर्व कृष्णकाव्य-रचयिताओं में केवल तीन कवियों का नाम गिना था। इस विषय में उनका कथन है: "अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले के, हिन्दी में कृष्ण-भक्ति पर काव्य लिखने वाले, केवल तीन नाम हमारे सामने आते हैं—१. जयदेव जो वस्तुतः संस्कृत का कवि है, २. विद्यापति जो मैथिली भाषा का कवि है और ३. नामदेव—महाराष्ट्र कवि जिसकी ब्रजभाषा परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है।[2]

ऊपर के विवेचन से इन विद्वानों की स्थापनाएँ गलत सिद्ध हो जाती हैं। वास्तव में विष्णुदास आदि सूरपूर्व के कृष्णभक्ति-काव्यकारों की रचनाएँ इनके अध्ययन का विषय नहीं बन सकी थीं, इससे इन्होंने सूर को ब्रजभाषा और हिन्दी (ब्रज) कृष्ण-भक्ति काव्य-धारा का आदि कवि मान लिया। हमारा नम्र निवेदन है कि सूरदास और बल्लभाचार्य से पूर्व ही श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण-लीला-गान और कृष्णाख्यान रचने की परम्परा मैथिली, ब्रज और अवधी में प्रचलित हो चुकी थी। आगे चलकर इन परम्पराओं का विकास अनेक भक्ति-सम्प्रदायों, उनके कवियों तथा अन्य अनेक स्वतन्त्र कवियों-द्वारा सम्पूर्ण आलोच्य काल में हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समय में यद्यपि सूर से पूर्व हिन्दी कृष्ण-साहित्य की यह सामग्री प्रकाश में नहीं आई थी तथापि उनकी अनुभवी आलोचक-बुद्धि ने ठीक ही व्यक्त किया था: "सूरसागर किसी चली आती गीति-काव्य-परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।" हमारा निवेदन है कि न केवल आगामी गीतिकाव्य अपितु समस्त कृष्णाख्यानक काव्य संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-पुरानी हिन्दी की समृद्ध परम्परा का ही विकसित रूप है।

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डॉ० दीनदयाल गुप्त), पृ० २७, २. वही पृ० २४

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

: ३ :

कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय और कवि

पीछे हम दक्षिण के जिन चार प्रमुख आचार्यों और उनके सम्प्रदायों का उल्लेख कर आए हैं, उनके व्यापक प्रभाव से उत्तर भारत में भी अनेक कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों का उदय और विकास हुआ। इन सम्प्रदायों में विशेष भक्ति-दर्शन तथा भक्ति के लोकप्रचलित व्यावहारिक रूप का समुचित विकास हुआ। इन सम्प्रदायों में दीक्षित भक्त-कवियों ने भक्ति की मनोहर स्रोतस्विनी समूचे भारत में प्रवाहित कर दी। न केवल सम्पूर्ण मध्यकाल अपितु आधुनिक काल में लोक-जीवन, साहित्य, कला और संस्कृति के सभी अंगों को इन्होंने प्रभावित किया। आगे इन सम्प्रदायों और इनके प्रमुख कवियों का परिचय दिया जाता है।

निम्बार्क या सनक सम्प्रदाय—दक्षिण के चार आचार्यों में से निम्बार्क आचार्य और विष्णुस्वामी द्वारा-कृष्णभक्ति को ही प्रश्रय मिला। निम्बार्क आचार्य (मृत्यु सन् ११७२ ई०) तेलगु ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय मथुरा-वृन्दावन में व्यतीत किया। इनके सिद्धान्त बहुतांश में रामानुज आचार्य से मिलते हैं। इनका मत द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद कहलाता है। इन्होंने गोपी-वल्लभ कृष्ण को महत्ता दी। कृष्ण की वामांगी राधा का भी इन्होंने महत्त्व स्वीकार किया। इनका प्रभाव और प्रचार इनके समय में तो उत्तर भारत में वृन्दावन तक ही सीमित रहा, पर पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियों में विकसित होने वाले चैतन्य, बल्लभ-सम्प्रदाय, राधा-वल्लभीय और हरिदासी आदि कई सम्प्रदायों पर इनका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। परम उपास्य श्रीकृष्ण होने के साथ इस सम्प्रदाय में राधा की उपासना भी प्रचलित हुई। निम्बार्क ने राधा को स्वकीया और कृष्ण की पत्नी माना है।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय—विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य विष्णु-स्वामी (१३वीं शती) ने भी कृष्णभक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इन्होंने भी शंकर के मायावाद का खण्डन करके अपने शुद्धाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक महाप्रभु बल्लभाचार्य इनके विशेष ऋणी हैं। ये स्वयं तो दक्षिण में ही रहे, पर बल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में इन्हीं के प्रभाव से कृष्णभक्ति का प्रचार किया। महाराष्ट्र संत ज्ञानदेव, नामदेव आदि इनके अनुयायी हुए।

महाराष्ट्र का बारकरी सम्प्रदाय—महाराष्ट्र में वैष्णव-भक्ति का यह सम्प्रदाय यद्यपि ईसा की ६वीं शताब्दी में ही स्थापित हो चुका था पर संत ज्ञानेश्वर (१३वीं-१४वीं शताब्दी) ने इस सम्प्रदाय को विशेष विकसित किया। इस सम्प्रदाय के मुख्य अराध्यदेव विट्ठल या विठोवा हैं जो कृष्ण का ही विशिष्ट साम्प्रदायिक नाम है। इस सम्प्रदाय में राधा के स्थान पर कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का महत्त्व स्वीकार किया गया। माधुर्य भाव की अपेक्षा इस सम्प्रदाय में वात्सल्य और दास्य भाव की प्रधानता रही।

जयकृष्णी सम्प्रदाय—महाराष्ट्र में १३वीं शती ई० में एक और सम्प्रदाय

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चला जिसे जयकृष्णी सम्प्रदाय कहा जाता है। चक्रधर इसके संस्थापक थे और उनके शिष्य नागदेवाचार्य ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित-संगठित रूप प्रदान किया। इसमें कृष्ण और दत्तात्रेय की उपास्यदेव-रूप में प्रतिष्ठा हुई। बारकरी सम्प्रदाय की तरह इसमें भी बाद में मूर्तिपूजा समाप्त हो गई। इस सम्प्रदाय का प्रचार महाराष्ट्र के अतिरिक्त गुजरात और पंजाब में भी हुआ। बाद में दत्तात्रेय को मानने वालों का अलग सम्प्रदाय चला जो दत्तात्रेय को कृष्ण का अवतार मानते थे।

बंगाल का वैष्णव सहजिया—बंगाल के बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय के अनुकरण पर वहाँ वैष्णवों का भी एक सहजिया सम्प्रदाय संगठित हुआ। इसमें नर-नारी के सहज प्रेम को राधा-कृष्ण के प्रेम से सम्बद्ध किया गया। नर-नारी के भीतर जो सहज प्रेम की धारायें प्रवाहित होती हैं, उनको राधा-कृष्ण के ब्रज-प्रेम में रूपांतरित कराके निर्मलतम बनाना ही इस सम्प्रदाय की सिद्धि थी। बौद्धों के ही अनुकरण पर नायिका-भजन अर्थात् राधा-भजन की भी इसमें मान्यता हुई। एक तरह से लौकिक प्रेम की सिद्धि इनका लक्ष्य बना। जबतक नायक-नायिका पूर्ण रूप से राधा-कृष्ण की उपलब्धि न करें तब तक उन्हें अपने भीतर कृष्ण-राधा का आरोप करके साधना-रत रहना चाहिये। चण्डीदास (१४वीं शताब्दी) इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रसिद्ध भक्त एवं बंगला कवि हुए हैं। उन्होंने रामी धोबिन में राधा का रूप मानकर प्रेम-साधना की थी।

चैतन्य या गौड़ीय सम्प्रदाय

12222

चैतन्य मत के प्रवर्त्तक महाप्रभु चैतन्यदेव ने समस्त बंगाल और उत्तरी भारत को भक्तिरसामृत से सिक्त कर दिया। चैतन्य बल्लभ आचार्य के समकालीन थे। इनका जन्म १४८५ ई० में बंगाल के नदिया स्थान पर हुआ। इनका बचपन का नाम विश्वम्भर था, पर बड़े होकर जब इन्होंने गार्हस्थ्य त्याग कर संन्यास ले लिया और परम वैष्णव भक्त बन गए, तो इनके अनुयायी इन्हें कृष्ण-चैतन्य कहने लगे। इन्होंने कर्मकाण्ड तथा वर्णाश्रम का विरोध किया और मोक्ष के लिए एकमात्र हरिस्मरण और कीर्तन को साधन बनाया। ये कृष्ण की प्रेम-भक्ति में इतने भाव-मग्न रहते थे कि और कुछ सुधबुध नहीं रहती थी। निम्बार्क आदि पूर्व-आचार्यों तथा बिल्वमंगल, जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति आदि पूर्व-भक्तों और कृष्ण-कवियों की रचनाओं का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा। कहते हैं कि विद्यापति के राधा-कृष्ण के श्रृंगारी पदों को गा-गाकर ये नृत्यरत और मस्त हो जाते थे।

श्री चैतन्य ने स्वयं तो अपने सम्प्रदाय का विशेष सिद्धांत-निर्माण नहीं किया, पर उनके कई विद्वान् शिष्यों ने गहन दार्शनिक विचार एवं भक्ति-सिद्धांत प्रकट किये। नित्यानन्द और अद्वैताचार्य नाम के विद्वानों ने सम्प्रदाय का तात्त्विक संगठन किया। चैतन्य के अन्य शिष्यों में 'षड्गोस्वामी' बहुत प्रसिद्ध हुए। इनमें भी तीन—रूप-गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी ने भक्ति का शास्त्रीय विवेचन करते हुए अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों—'भक्तिरसामृत-सिंधु', 'उज्ज्वलनीलमणि', 'लघु भागवतामृत' (रूपगोस्वामी-विरचित), 'श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध की टीका', 'बृहद्भाग-

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

वतामृत' (सनातन गोस्वामी द्वारा रचित), 'षट् संदर्भ' तथा 'गोपाल चम्पू' (जाव-गोस्वामी) की रचना की। चैतन्य मत को 'अचिंत्य भेदाभेद' कहा जाता है। श्री कृष्ण परम तत्त्व हैं। उनकी शक्तियां अनन्त हैं। शक्ति और शक्तिमान में न तो परस्पर भेद है, न अभेद। दोनों का सम्बन्ध तर्क से अचिंत्य है। बल्लभ सम्प्रदाय की तरह चैतन्य सम्प्रदाय में भी रागानुगा भक्ति की महत्ता मान्य हुई और भक्ति के सख्य, वात्सल्य, दास्य आदि अन्य प्रकारों की अपेक्षा मधुर भाव को प्रधानता मिली। माधुर्य भाव की रति चैतन्य मत में तीन प्रकार की मानी गई है—१. साधारण रति, जैसी कुब्जा की कृष्ण के प्रति थी, २. समंजसा रति, जैसी रुक्मिणी व जाम्बवती की थी और ३. समर्था रति, जिसका आदर्श ब्रजगोपियाँ तथा राधा हैं। इस समर्था रति में भी गोपी-भाव की अपेक्षा राधा-भाव को चैतन्य ने अपनाया। वे स्वयं राधारूप होकर कृष्ण-प्रेम में 'महाभाव' का अनुभव करते थे। इसी कारण सम्प्रदाय के लोग उन्हें राधा का अवतार मानने लगे थे। इस सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ उनकी पूर्ण शक्ति राधा को भी आराध्य माना गया। कृष्ण जगत-मोहन हैं तो राधा इन्हें भी मोहित करती है। अतः राधा सर्वश्रेष्ठ हैं।

उत्तर भारत के हिन्दी-प्रदेश में भक्ति-आन्दोलन—विशेषतः कृष्ण-भक्ति के प्रसार में चैतन्य का महत्त्वपूर्ण योग है। इस सम्प्रदाय के प्रभाव से अनेक भक्त-कवियों ने हिन्दी भाषा में भी कृष्ण-भक्ति-साहित्य की प्रचुर रचना की। चैतन्य-अनुयायी प्रमुख हिन्दी कवियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवि —चैतन्य-सम्प्रदाय के दार्शनिक एवं भक्ति-सिद्धांत मुख्यतः संस्कृत में प्रकाशित हुए और मूलतः गौड़ (बंगाल) प्रदेश से सम्बन्धित होने के कारण बंगाली भक्त-कवियों ने बंगला में भक्ति-रचनाएँ कीं। पर इसके कुछ अनुयायी ब्रज मण्डल और हिन्दी प्रदेश में भी रहते थे। अतः उन्होंने ब्रज भाषा में भी अपनी भक्ति भावना व्यक्त की जो हिन्दी साहित्य का गौरव बनी। इस सम्प्रदाय और उसके ब्रज-कवियों का परिचय श्री प्रभुदयाल मित्तल ने अपनी पुस्तक 'चैतन्य मत और ब्रज साहित्य' में दिया है। पर इस सम्प्रदाय के हिन्दी कवियों में कोई ऐसी विशेष बात नहीं है जिसकी बिना पर इन्हें बल्लभ-सम्प्रदायी आदि अन्य कवियों से भिन्न इसी सम्प्रदाय का सिद्ध करती हो। अधिकांश कवियों का व्यक्तिगत सम्बन्ध भी इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त बल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय आदि अन्य मतों से भी था।

रामराय जी और उनके शिष्य—इस सम्प्रदाय के अत्यन्त प्रभावी भक्त-कवि रामराय जी हुए हैं। इनका जन्मकाल १५वीं शताब्दी ई० का अन्त माना जाता है। ये संस्कृत के भी बड़े विद्वान थे। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य भी लिखा था। इन्होंने ब्रजभाषा में दो रचनाएँ कीं—एक जयदेव के गीत-गोविन्द का हिन्दी-रूपांतर जो 'गीत-गोविन्द भाषा' नाम से प्रसिद्ध है, दूसरी 'आदिवाणी' मौलिक रचना है। गीत-गोविन्द का अनुवाद भी सुन्दर बन पड़ा है। 'आदिवाणी' में रामराय जी ने राधा-कृष्ण की शृंगारी लीलाओं-विषयक १०१ सुन्दर पदों की रचना की है। श्री चैतन्य के प्रभाव से कवि ने राधा-माधव की घोर शृंगार-लीला का निःसंकोच चित्रण किया

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

है। राधा के विरहोत्कंठिता, वासकसज्जा, सुरतरंगी आदि अनेक रूपों का चित्रण हुआ है। पद-शैली भी लालित्यपूर्ण है :

आजु किसोरी लेत हिलोर।
नैक समात न हिये रसिकनी, मिली जु नवल किसोर।।
सिर सोभत कुसुम लट अटपट, विकिरत चारों ओर।
अरुन नैन आलस बस बिथकित, पीक कपोल अथोर।।
सुरति रंग मैं रंगी रंगीली, लूटे निज चित-चोर।
डगमगात पग धरत गहि लई, 'रामराय' पट छोर।।

जैसाकि कहा जा चुका है, रामराय जी बड़े प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले थे। उनके बारह शिष्य प्रसिद्ध भक्त-कवि हुए। उनके नाम हैं –भगवानदास, गरीबदास, विष्णुदास, जुगलदास, राधिकानाथ, किशोरदास, केशवदास, मनोहरदास, मधुसूदन, हरिदास और तीर्थराम। वैष्णव-वार्ताओं में रामराय जी तथा उनके अधिकांश शिष्यों के बारे में यह कहा गया है कि ये गौड़ीय सम्प्रदाय से बाद में बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे।

रामराय जी के शिष्य **भगवानदास जी** (वर्तमानकाल १६वीं शती) ने कुछ फुटकर पदों की रचना की, जिनमें राधाकृष्ण और गोपी-कृष्ण-प्रेम के कई भव्य चित्र हैं। इनके पदों में लोकगीतों की तरज भी काफी पाई जाती है, एक उदाहरण देखिए :

मुरलीवारे सांवरे, नैक मारग मोंहि बताव रे।
संग न सहेली, फिरौं अकेली, कित नंदीपुर गांव रे।।
भूलि परी संकेत सघन बन, हौं अबला कित जाऊं रे।
मृगनैनी के वचन सुनत ही, आय मिले तिंहि ठांउ रे।।

रामराय जी के शिष्यों में **गरीबदास** जी ने छन्दशैली अपनाई और 'शृंगार-शतक', 'आनन्द शतक' और 'वृन्दावन शतक' नाम से विभिन्न छन्दों में ३ शतक लिखे। शृंगार शतक में राधा-कृष्ण की शृंगारी लीलाओं का वर्णन है और 'वृन्दावन-शतक' में कवि ने वृन्दावन की महिमा का बखान किया है। इन्होंने दोहा, सोरठा, कुण्डलिया आदि छन्दों का सफल प्रयोग किया है।

विष्णुदास धनाढ्य वैश्य थे, सर्राफे का काम करते थे, पर गुरु रामराय जी के प्रभाव से विरक्त होकर वृन्दावन रहने लगे थे। इन्होंने 'वैराग्य-विज्ञान' नामक रचना की जिसमें लगभग १०० सरस सवैयों में संसार से वैराग्य तथा राधा-माधव-भजन पर बल दिया गया है। एक सवैया देखिये :

काम तजौ, धन-धाम तजौ, गृह-गांम तजौ, मनि दीप अटारी।
लाज तजौ, कुल काज तजौ, तजौ राज के साज-समाज सुखारी।
धाम तजौ, सुतमाय तजौ, निज भाय तजौ, जो रजोगुन धारी।
'विष्णु' सबै तजिये, भजिये गुरु, राधिका-माधव प्रीतम प्यारी।।

रामराय जी के अन्य शिष्यों ने भी ब्रजभाषा में कई रचनाएँ कीं। **जुगलदास** ने 'भक्तियोग' एवं 'योग कल्पवल्ली' नामक दो रचनाएँ दोहा-शैली में लिखीं। दोनों

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

में ही भक्ति की महिमा का वर्णन है। **राधिकानाथ** की चार रचनाएँ—१. महावाणी, २. प्रेमसंपुट, ३. राधारस सुधा-निधि और ४. 'रस-बिन्दु' कही जाती हैं। **किशोरीदास**-कृत कामकलेवर, **केशवदास**-कृत 'गुरु पूर्णिमा', 'वैष्णवभेद', 'भक्ति वर्धिनी', 'लोक-दीपिका' आदि कई रचनाएँ हैं। **मधुसूदनदास** की 'प्रेमदर्शन' उल्लेखनीय है। **तीर्थराम** की 'श्री हरिलीला' और व्रजवास महत्त्वपूर्ण हैं। श्री रामराय जी और उनके इन शिष्यों का विस्तृत अध्ययन शोध का महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि इनके काव्य में कृष्ण-भक्ति-काव्य की सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। शैली और विषय की विविधता के साथ-साथ कुछ कवियों में काव्यत्व का उत्कर्ष भी पर्याप्त दिखाई देता है।

माधवदास जगन्नाथी—चैतन्य-सम्प्रदाय के कवियों में माधवदास जगन्नाथी का भी विशेष महत्त्व है। इनका रचनाकाल १६वीं शती ई० है। इन्होंने कई रचनाएँ कीं। ये अधिकतर जगन्नाथपुरी रहते थे, इसी से इनका नाम 'जगन्नाथी' पड़ गया। इन्होंने 'जगन्नाथ महात्म्य' नामक एक रचना भी की। 'नारायणलीला', 'बाललीला', 'ध्यानलीला,' 'रघुनाथ लीला', 'मदालसा आख्यान', 'ग्वालिन झगरौ', 'परतीत परीक्षा' आदि इनकी कई रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रगोपाल—रामराय जी के भाई चन्द्रगोपाल भी चैतन्य सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवि-आचार्य हुए हैं। रसिक मोहनराय आदि इनके भी दो-तीन शिष्य इस सम्प्रदाय के भक्त-कवि हुए। चन्द्रगोपाल जी (जन्म लगभग १५०० ई०) ने राधा-कृष्ण-प्रेम और भक्ति-विषयक कई रचनाएँ संस्कृत एवं ब्रजभाषा में रचीं। 'चन्द्रचौरासी', 'अष्टयाम सेवा-सुधा', 'गौरांग अष्टयाम', 'ऋतु विहार', 'राधा-विरह' आदि इनकी ब्रजरचनायें हैं। गौर वर्ण के कारण श्री चैतन्य को 'गौरांग' भी कहा जाता था। 'गौरांग-अष्टयाम' में चन्द्रगोपाल जी ने श्री चैतन्य की दिनचर्या का वर्णन पदशैली में किया है। 'अष्टयाम सेवा-सुधा' में कृष्ण की अष्टयाम सेवा – विशेषतः शृंगार और काम-केलि का वर्णन है। 'ऋतुविहार' और 'राधा विरह' में काव्य-गुण पर्याप्त दिखाई देता है। 'ऋतुविहार' में विभिन्न ऋतुओं का उद्दीपनकारी चित्रण है।

गदाधर भट्ट – चैतन्य संप्रदायी विद्वान् जीवगोस्वामी के प्रभाव से गदाधर भट्ट वृन्दावन में रहकर कृष्णभक्ति में लीन हो गए थे। नाभादास जी ने अपने 'भक्तमाल' में गदाधर भट्ट की प्रशंसा में एक छप्पय लिखा है। ध्रुवदास, नागरीदास आदि कई अन्य भक्त-कवियों ने भी गदाधर भट्टका परम वैष्णवभक्त और कवि के रूप में स्मरण किया है। इनके लगभग १०० पद मिलते हैं, जिनमें कृष्ण की ब्रजलीलाओं का गान है।

अकबर के दरबारी कवि और अमीन **सूरदास मदनमोहन** भी चैतन्य संप्रदाय से ही सम्बन्धित बताये जाते हैं। इन्होंने भागवत दशमस्कंध का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था, जो अपूर्ण रूप में प्राप्य है। इनके कुछ स्फुट पद भी उपलब्ध हैं।

माधवदास माधुरी—श्री माधवदास माधुरी (१७वीं शती) की आठ रचनाएं हैं—१. उत्कंठा माधुरी, २. वंशीवट माधुरी, ३. केलि माधुरी, ४. दान माधुरी, ५. वृन्दावन माधुरी, ६. मान माधुरी, ७. होरी माधुरी और ८. मिश्रा जी की बधाई। ये

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रचनाएं श्री माधुरी वाणी' नामक संग्रह में प्रकाशित हो चुकी हैं। कवि ने इनमें दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, रोला, सोरठा आदि कई छन्दों की शैली में कृष्ण की विविध प्रेमलीलाओं का चित्रण किया है।

कृष्णदास — १७वीं शताब्दी के कवि कृष्णदास जीवगोस्वामी के शिष्य थे। इन्होंने जीवगोस्वामी-विरचित संस्कृत रचना 'गोपाल चम्पू' का भाषा-अनुवाद सरस एवं सरल व्रजभाषा में किया था। 'श्रीगौर नाम रस चम्पू' इनकी मौलिक रचना है।

गौरगणदास —इस संप्रदाय के एक विशिष्ट कवि गौरगणदास (१८वीं शती) हुए हैं। इनकी रचनाएं —'गौरांग-भूषण-विलास', 'शृंगार मंजावली' और 'सिद्धांत-प्रणाली शाखा' —'गौरांग भूषण-मंजावली' नामक संग्रह में प्रकाशित हो चुकी हैं। गौरगणदास पर उर्दू-फारसी का भी प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप इनकी रचनाओं में उर्दू शैली और उर्दू छन्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है।

इनके अतिरिक्त चैतन्य-संप्रदाय के और भी बीसियों कवियों की रचनाएँ प्राप्य हैं। यह परम्परा १९वीं शताब्दी तक निर्बाधरूप से चली। **सुबल श्याम** (१८वीं शती, रचना 'चैतन्य चरितामृत'), **प्रियादास** (१८वीं शती, 'भक्तमाल की टीका', 'रसिक-मोहिनी' आदि रचनाएँ), **श्री मनोहर राय** (वर्तमानकाल १८वीं शती, रचनाएं— 'श्री राधारमण रस-सागर', संप्रदाय-बोधिनी), **कल्याणराय** (वर्तमानकाल १८वीं शती, रचनाएँ, 'व्रजमाधुरी' और 'संकल्प कल्पद्रुम'), **गोपालदास** (१९वीं शती, रचनाएँ —'दम्पति काव्य-विलास', 'भाव-विलास', दूषण विलास आदि कई), **नन्दकिशोर** (१९वीं शती, रचनाएँ 'बारहखड़ी महिमा' और कुछ स्फुट पद), **कृष्ण चैतन्य** (वर्तमानकाल १९वीं शती, रचना 'श्री राधारमण शृंगाराष्टक'), **ललितकिशोरी** (वर्तमान-काल १९वीं शती, रचनाएँ—'रस-कलिका', 'जुगलविहारशतक', विनय शृंगारशतक आदि कई) आदि कुछ और कवि उल्लेख्य हैं।

: ४ :

बल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धांत और साहित्य

पीछे कहा जा चुका है कि १६वीं शताब्दी विक्रमी के मध्य में बल्लभाचार्य ने उत्तरी भारत, विशेषत: व्रजमण्डल में कृष्णभक्ति का प्रचार और विशिष्ट प्रवर्त्तन किया। ये विष्णुस्वामी की ही रुद्र परम्परा में हुए हैं। विष्णुस्वामी के भक्ति-सिद्धांतों से ही प्रेरणा लेकर बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतदर्शन तथा प्रेमलक्षणा भक्ति के मार्ग—पुष्टिमार्ग—की व्यवस्थित रूप में स्थापना की। बल्लभाचार्य के पिता श्री लक्ष्मणभट्ट भी परम वैष्णव कृष्ण-भक्त थे। पिता के धार्मिक संस्कारों का बल्लभ पर विशेष प्रभाव पड़ा। बल्लभ बड़े मेधावी थे। तेरह वर्ष की अत्यल्प आयु में ही उन्होंने वेद, वेदांग, पुराण आदि शास्त्र-ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संप्रदाय की स्थापना और प्रचार—कुछ समय बाद युवा होने पर बल्लभ ने देश का भ्रमण आरम्भ किया। सर्वप्रथम दक्षिण के राजा कृष्णदेव राय के सम्मुख विजयनगर में इन्होंने पण्डितों की भारी सभा में शास्त्रार्थ करके शंकर के मायावाद का खण्डन किया। उसी समय इनका आचार्यत्य सिद्ध हुआ। राजा ने इनका बहुत सम्मान किया। इन्हें विष्णुस्वामी की गद्दी मिली। इसके बाद ये अपने सिद्धांत-प्रचार के लिए निकल पड़े। इन्होंने समूचे भारत के धार्मिक स्थानों, तीर्थों आदि की कई यात्राएँ कीं। आचार्य जी की ये यात्राएँ बल्लभ संप्रदाय में पृथ्वी-प्रदक्षिणायें कहलाती हैं। १४९२ ई० में ये ब्रज आए और गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के एक मन्दिर की स्थापना की। इसी समय से बल्लभ संप्रदाय की व्यवस्थित रूप से स्थापना समझनी चाहिए। इन्होंने ब्रजमण्डल में स्थान-स्थान पर घूमकर और विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपने मत तथा कृष्णभक्ति का प्रचार किया। अनेक लोगों को अपने संप्रदाय में दीक्षा दी। ब्रजभूमि को अपने संप्रदाय का केन्द्र बनाया। अनेक स्थानों पर श्रीनाथ-जी के मन्दिरों की स्थापना की। आचार्य जी ने हिन्दुओं में अपने शास्त्र-ग्रन्थों, अपने परंपरागत वैष्णव धर्म, अपने अवतारों और धार्मिक विचारों के प्रति आस्था, श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न किया।

वैष्णव धर्म के प्रचार में स्वामी रामानन्द से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य बल्लभा-चार्य ने किया है। इनके पश्चात् भी बल्लभ संप्रदाय की परम्परा बहुत समय तक चली। ब्रजभूमि से उनका प्रभाव फैलता-फैलता समस्त उत्तरी भारत में फैल गया। ब्रजमण्डल के अतिरिक्त गुजरात और राजपूताना में भी इस संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपने शुद्धाद्वैतदर्शन और भक्ति-मार्ग पर कई ग्रन्थों की रचना करके अपने सिद्धांतों का बड़ी विद्वत्ता से प्रतिपादन किया।

बल्लभाचार्यजी के गोलोकवास (सं १५८७) के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ आचार्य हुए। उन्होंने भी यथाशक्ति वैष्णव धर्म का प्रचार किया। उनके प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात था। परन्तु दुर्भाग्यवश २८ वर्ष की अल्पायु में ही उनका देहांत हो गया। उनके पश्चात् लगभग सं० १५९६ में बल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र गो० विट्ठलनाथ गद्दी पर बैठे। गोसाइं विट्ठलनाथ ने भी अपने पिता की भाँति यात्रायें करके अगणित व्यक्तियों को अनुयायी बनाया। इन्होंने संप्रदाय के वैभव को बहुत बढ़ाया। ठाकुर जी के सेवामण्डल की यथोचित व्यवस्था का श्रेय इन्हें ही है। इन्होंने ही कृष्ण-लीलाओं से सम्बन्धित अनेक आकर्षक उत्सवों का प्रचलन किया। इस संप्रदाय के शिष्यों की वित्तजा भक्ति के कारण बड़े व्यय-साध्य सेवा-विधान प्रचलित हो गए। मन्दिरों का वैभव, उत्सवों की चमक-दमक, गान-विद्या की रोचकता और भोग-श्रृंगार का आकर्षण इस सांप्रदायिक भक्ति के प्रचार का मुख्य साधन बना जिससे प्रारंभ में तो पुष्टि-संप्रदाय का अवश्य व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ, किन्तु बाद में यही भोग-विलास से पूर्ण सेवा-विधि इस संप्रदाय व इसके विषयी-सेवकों के पतन का कारण बनी।

गोसाइं विट्ठलनाथ की एक और देन इस संप्रदाय में यह है कि उन्होंने सेवा-

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

व्यवस्था की उन्नति के साथ सेवक कवियों, संगीतज्ञों, चित्रकारों, वाद्य-विशेषज्ञों, पाक-शास्त्रियों एवं अन्य कलाकारों का भी संगठन किया और उनकी कलाओं को संप्रदाय की उन्नति और प्रचार में लगा दिया। अष्टछाप के निर्माण में भी यही हेतु था। श्री विट्ठलनाथ जी के भी अनेक शिष्य भक्त हुए जिनमें २५२ वैष्णव भक्त संप्रदाय में विशेष प्रसिद्ध हुए। बल्लभाचार्य जी की तरह गोसाईं विट्ठलनाथ ने भी पुष्टिभक्ति का मार्ग सभी जातियों के व्यक्तियों के लिए खोले रखा। अकबर बादशाह और उसके वजीर तथा सामंत बीरबल, मानसिंह आदि उनका बड़ा सम्मान करते थे। 'वार्ता-साहित्य' से पता चलता है कि बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह, राजा आशुकरण, रानी दुर्गावती और कई राजा भी उनके शिष्य हो गए थे।

इस प्रकार बल्लभ संप्रदाय का प्रभाव खूब बढ़ा। गो० विट्ठलनाथ के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर जी ने भी अपने संप्रदाय का प्रभाव बढ़ाने में योग दिया। परन्तु संप्रदाय की विशेष प्रतिष्ठा बढ़ाने, उसके मर्म को समझाने का असली कार्य विट्ठलनाथ जी के पश्चात् गोसाईं गोकुलनाथ जी द्वारा और गोकुलनाथ जी के पश्चात् श्री हरिराय जी द्वारा सम्पन्न हुआ। गो० हरिराय जी संस्कृत, गुजराती तथा ब्रज-भाषा के बहुत बड़े विद्वान् थे। इन्होंने न केवल ८४ एवं २५२ वैष्णवन की वार्ताओं पर 'भावना' लिखी अपितु संस्कृत, गुजराती तथा ब्रजभाषा के भक्ति-ग्रन्थों का भी निर्माण किया और अनेक टीकाएँ व व्याख्याएँ लिखीं। बल्लभ-संप्रदाय के ये उच्च कोटि के आचार्य एवं उन्नायक हुए।

भक्तिकाल के इस विख्यात और प्रभावशाली संप्रदाय में अष्टछाप के अष्ट-कवि-सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी—दीक्षित हुए थे जिन्होंने अपनी कविता-गंगा की रसधारा से इस संप्रदाय को रससिक्त किया। अष्टछापी कवियों की साहित्यिक देन का हम आगे अध्ययन करेंगे, पहले इस संप्रदाय के दार्शनिक मतवाद व भक्तिपद्धति का विवेचन करते हैं।

शुद्धाद्वैतदर्शन—जैसाकि पीछे कहा जा चुका है, बल्लभाचार्य और उनके अनुयायी विष्णुस्वामी की रुद्र परम्परा में ठहरते हैं। विष्णुस्वामी का कोई ग्रन्थ उप-लब्ध नहीं, जिसके आधार पर हम उनके दर्शन पर विचार कर सकें। किन्तु बाह्य साक्ष्यों के आधार पर श्री भांडारकर ने सिद्ध किया है कि इनका वही मत और दर्शन है जिसे बल्लभाचार्य ने व्यापक रूप देकर प्रचारित किया। बल्लभ सम्प्रदाय के ग्रन्थों से भी बल्लभाचार्य विष्णुस्वामी के मतानुयायी प्रतीत होते हैं। शुद्धाद्वैत दर्शन की रूप-रेखा निश्चय ही बल्लभाचार्य ने विष्णुस्वामी से ग्रहण की होगी। जनश्रुति भी इस बात की पुष्टि करती है कि बल्लभ को विष्णुस्वामी की गद्दी प्राप्त हुई थी। बल्लभा-चार्य बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्होंने अपने 'अणुभाष्य' में शुद्धाद्वैत मत पर विस्तृत प्रकाश डाला है। आत्मा-परमात्मा में शुद्धाद्वैतता का प्रतिपादन होने से इनके मत को शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ब्रह्म – इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म माया से रहित शुद्ध है।[1] परब्रह्म के संबंध में बल्लभाचार्य ने बड़े पांडित्यपूर्ण ढंग से विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने ब्रह्म को एक अखण्डित, आदि, अनादि अद्वैत तत्त्व मानते हुए सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा है। वह अविनाशी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह समस्त जगत् का आधार-भूत कारण है। वह अविभक्त है, अपनी इच्छा-मात्र से विभक्त होने वाला है। वह एकरस है और अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपने स्वरूप और स्वरचित लीला में निरन्तर मग्न रहता है।

उसे जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है तो स्वांत:स्थित आनन्द-धर्मी आधिदैविक रूप से वह अपनी शक्तियों के साथ रमण करता है। उसका वही आनन्दधर्म प्रकटरूप पुरुषोत्तम कहलाता है। वह ब्रह्म विरुद्ध-धर्माश्रयी है। वह प्राकृत-धर्मों से रहित होते हुए भी सधर्मक है, नि:शेष और निर्गुण होते हुए भी सविशेष एवं सगुण है। अदृश्य होते हुए भी सदृश्य है, अविभक्त होते हुए भी सविभक्त है। इसी विरुद्धधर्मता के कारण पूर्णावतार कृष्णावतार दशा में वह बालक होते हुए भी रसिक-मूर्धन्य है। जो ब्रह्म मन और वाणी से परे है वही साधना और भक्ति से तथा स्वेच्छा से गम्य और गोचर भी हो जाता है। इस सच्चिदानन्द-रूप ब्रह्म में आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति है जिससे वह एक से अनेक और अनेक से एक होता है। ब्रह्म से ही सभी पदार्थों का आविर्भाव और तिरोभाव होता है।

शंकर ने ब्रह्म से इतर जीव-जगत् आदि सबको असत्य और कल्पना-मात्र कहा था। ईश्वर, जीव और जगत् को तो बल्लभाचार्य भी अभिन्न कहते हैं परन्तु उनके अनुसार जड़ जगत् और जीव-सृष्टि भी उसी सच्चिदानन्द के अंश होने के कारण सत्-स्वरूप हैं, अत: सत्य हैं। जड़ प्रकृति में उसके सत् अंश का आविर्भाव रहता है। चिद् तथा आनन्द धर्म तिरोभूत रहते हैं। जीव में सत् और चिद् धर्म प्रकट रहते हैं और आनन्द तिरोभूत।

उसकी इच्छाशक्ति ही बल्लभ सम्प्रदाय में उसकी मायाशक्ति है। यह माया शंकर की माया की तरह भूठी नहीं। वह आनन्दी अपने आनन्द के लिए ही लीला-विस्तार करता है। 'रसो वै स:'—वह परब्रह्म रस-रूप है। यही ब्रह्म आनन्दकार पुरुषोत्तम-रूप में अथवा अक्षर ब्रह्म-रूप में अपने अक्षरधाम में अपनी इच्छानुसार अनेक लीलाओं में मग्न रहता है। उसके अक्षरधाम को गोलोक भी कहते हैं। अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्तियों को अपने में से ही प्रसारित करके यह ब्रह्म अनेक आनन्द-लीलाएँ करता है। इसी रसरूप पुरुषोत्तम की लीलाओं में भाग लेकर उसका नैकट्य प्राप्त करना ही बल्लभसम्प्रदायी भक्तों को काम्य होता है।

बल्लभसंप्रदाय में श्रीकृष्ण को ही पूर्णानन्द पुरुषोत्तम माना गया है। बल्लभ ने आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण को ही मूल ब्रह्म और अपने पुष्टिमार्ग का इष्टदेव माना।

---

१. मायासम्बन्धरहित शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपंहि शुद्धं ब्रह्मं मायिकम्॥ (शुद्धाद्वैतमार्तण्ड)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

जब आनन्दस्वरूप पुरुषोत्तम अपने आनन्द के लिए बाह्य लीला करना चाहता है, तब उसकी शक्तियाँ भी बहिःस्थित हो जाती हैं और विविध रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन शक्तियों में श्रिया, पुष्टि, गिरा आदि बारह शक्तियाँ प्रमुख हैं जो श्री स्वामिनी राधा के रूप में अन्य नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही प्रकट होती हैं। इनमें से पुनः अनन्त भाव प्रकट होते हैं जो अनेक सखी-सहचरियों के रूप में उनके साथ रहते हैं। इन शक्तियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए पुरुषोत्तम अपने में से श्री वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, कुंज-निकुंज, वृक्ष, पशु-पक्षी, गोकुल आदि को भी प्रकट करता है। ये सब पुरुषोत्तम के आधिदैविक ऐश्वर्य-रूप होने से आनन्दमय चेतन रूप हैं, फिर भी कृष्ण-लीला के लिए इन सबने जड़ता धारण कर रखी है।

वल्लभाचार्य ने भगवान श्रीकृष्ण के रूप में एक विशेषता रखी। जहाँ अन्य अधिकांश दक्षिणी संप्रदाय मर्यादा-मार्गी हैं वहाँ वल्लभ ने केवल पुष्टिमार्ग को अपनाया। इसी कारण उनके पुष्टि-पुरुषोत्तम ब्रह्म और रामानुज अथवा रामानन्दी संप्रदाय के मर्यादा-पुरुषोत्तम ब्रह्म में अन्तर है। मथुरा, द्वारिका तथा कुरुक्षेत्र में लोक-रक्षण, धर्म-संस्थापन की लीलाओं के करने वाले तथा व्रज में दुष्टों का संहार करने वाले कृष्ण का रूप लोक-वेद-प्रथित धर्म-संस्थापक रूप है और बाल-रूप में माता यशोदा, बाबा नन्द आदि को आनन्दित करने वाले, ग्वाल सखाओं के साथ गोचारण करने वाले तथा गोकुल-वृन्दावन में गोपियों के साथ रास रचाने वाले किशोर कृष्ण का रूप रसात्मक है। वल्लभ सम्प्रदाय में भी यद्यपि कृष्ण के दोनों रूपों की मान्यता है, पर पुष्टिमार्ग में रसेश कृष्ण को ही मुख्यतः अपनाया गया। इसी रसेश भगवान् कृष्ण को ही अपनी समस्त वस्तुओं, भावों-सहित समर्पण कर देना ही ब्रह्म-भाव की प्राप्ति अथवा पुष्टि है। वल्लभ के पुष्टिमार्ग में रसेश कृष्ण की लीलाओं को ही व्यावहारिक प्रधानता मिली। योगीराज कृष्ण के स्थान पर बाल कृष्ण और व्रज-बिहारी किशोर-कृष्ण का कोमल रूप ही इसीलिए अष्टछापी आदि कृष्ण-भक्त कवियों का मुख्य आलम्बन बना।

जीव—'एकोऽहं बहुस्याम'—'तैत्तिरीय उपनिषद्' के अनुसार, ब्रह्म को जब ऐसी इच्छा हुई, तभी जीव-सृष्टि की उत्पत्ति हुई। वल्लभ-मतानुसार भी भगवान् को जब रमण करने की इच्छा होती है, तब वे अपने आनन्दादि गुणांशों को तिरोहित कर स्वयं जीव-रूप ग्रहण कर लेते हैं। इनमें क्रीड़ा की इच्छा ही प्रधान कारण है, माया का सम्बन्ध तनिक नहीं। जैसे अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार असंख्य जीव ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार शुद्धाद्वैतमत के अनुसार भी जीव अंश हैं और परमात्मा अंशी। जीव में आनन्द शक्ति का तिरोभाव और चिद् तथा सत् का आविर्भाव रहता है। आनन्दधर्म का तिरोभाव होने से भगवान् के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन छः गुणों का भी जीव से लोप हो जाता है। इनके लोप से जीव में क्रमशः दीनता, पराधीनता, अनेक सांसारिक दुःखों, जन्म-मरण के दोष, अहं-बुद्धि और अज्ञानता, विषयासक्ति आदि का समावेश हो जाता है। बद्धजीव अंश होने से अल्पज्ञ और अल्प सामर्थ्यवान् है, इसी से वह अपने अंशी परमात्मा के वशीभूत है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ब्रह्म का सदंश विद्यमान रहने से जीव भी यद्यपि ब्रह्म की तरह सत्य है पर अविद्या माया से आवेष्ठित होने पर वह अपने मूलरूप से आत्म-विस्मृत रहता है।

शंकर के मायावाद में जीव की सत्ता भ्रम-मात्र है। वस्तुतः शंकर-मत में न जीव है, न जगत्, ये केवल माया (अविद्या) से प्रतिभासित हैं। इसके विपरीत वैष्णव सम्प्रदायों में जीव की अंशरूप में स्थिति, सत्ता और अनेकरूपता बिल्कुल सत्य है।

जीव के प्रकार – आनन्द का तिरोधान होने पर जीव 'संसारी' कहलाते हैं, और 'संसारी' जीव जब अविद्या से मुक्त हो जाते हैं तो 'मुक्त' जीव कहे जाते हैं। स्फुलिंगवत् व्युच्चरण के समय आनन्द के तिरोधान से पूर्व तक की दशा जीव की 'शुद्ध' दशा होती है। जीव की 'शुद्ध दशा' और 'मुक्तदशा' में विशेष अन्तर नहीं होता। पुष्टिमार्ग में संसारी जीव-सृष्टि का विभाजन निम्न तालिका से समझा जा सकता है—
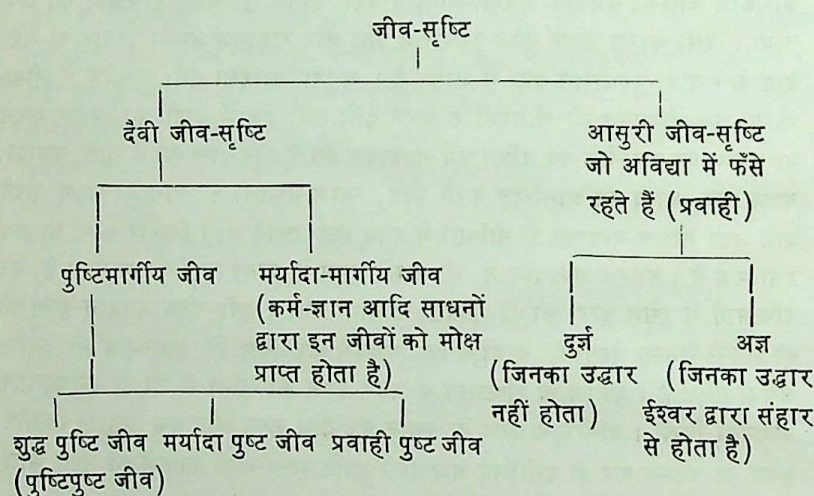
पुष्टि मार्ग के अनुसार, उपर्युक्त पुष्टिमार्गीय जीवों को ही भगवान् के लोक तथा उनकी आनन्द-लीला के भागी होने का लाभ प्राप्त होता हैं। मुक्त अवस्था में जीव आनन्दांश को प्रकटित कर स्वयं सच्चिदानन्द हो जाता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार यह आनन्दांश भगवदनुग्रह प्राप्त होने से ही प्रकट होता है।

जगत् – ब्रह्म के आनन्द और चिद् धर्म के तिरोभाव तथा सदंश के आविर्भाव से जगत की उत्पत्ति होती है। 'जिस प्रकार लपेटा हुआ कपड़ा फैलाने पर वही रहता है, उसी प्रकार आविर्भाव दशा में जगत् तथा तिरोभाव रूप में ब्रह्म एक ही है, भिन्न नहीं।' जगत का आविर्भाव केवल भगवान की लीला के लिए है, अतः ब्रह्म-रूप जगत उसका सदंश होने के कारण सत्य है, नित्य है, मिथ्या नहीं।

इस जगत् का कर्त्ता और उपादान कारण ब्रह्म ही है। जिस प्रकार मकड़ी अपनी इच्छा से अपने में से ही तंतुओं को निकालकर जाल में रमण करती है, और फिर अपनी इच्छा से ही उसे अपने मुख में समेट लेती है, उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म इस जगत का आविर्भाव-तिरोभाव करता है। आचार्य बल्लभ जगत् की उत्पत्ति और विनाश

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नहीं मानते, प्रत्युत आविर्भाव और तिरोभाव के पक्षपाती हैं। ब्रह्म का जगत्-रूप में आविर्भाव या परिणति दूध के दही-रूप में परिणत होने की तरह विकृत नहीं अर्थात् दूध से दही बनती है, परन्तु दही फिर दूध-रूप में नहीं लायी जा सकती, यह परिणाम विकृत है, परन्तु ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध में अविकृत परिणामवाद को ही आचार्य बल्लभ ने स्वीकार किया है। यह परिणति स्वर्ण-कुण्डल की परिणति के समान है। जैसे सोने से कुण्डलादि आभूषण बन जाते हैं और गलाने पर फिर वे सोना बन जाते हैं, उसी प्रकार यह जगत् भी शुद्ध ब्रह्म का (माया-सवलित ब्रह्म का नहीं) अविकृत परिणाम है और लय की स्थिति में शुद्ध ब्रह्म ही हो जाता है। ब्रह्म ही अपने सद्धर्म से २८ तत्त्वों से युक्त होकर जगत-स्वरूप होता है।

जगत् और संसार—बल्लभ मत में जगत् और संसार में अन्तर माना गया है। ईश्वरेच्छा के विलास से सदंशरूप प्रादुर्भूत जगत है, जो सत्य है, परन्तु अविद्या माया से बद्ध जीव-द्वारा अपनाया गया कल्पित और मिथ्या तत्त्व 'संसार' है। जगत् ईश्वर-कृत है और संसार बद्ध जीवकृत। मोह, माया, ममता, आकर्षण, तृष्णा, विषय-वासनाएँ, सुख-दुःख आदि देहधर्म से सम्बन्धित बातें इस संसार का रूप हैं। भक्ति आदि साधनों-द्वारा जीव की मुक्ति हो जाने पर संसार की समाप्ति हो जाती है किन्तु जगत् ज्यों-का-त्यों स्थित रहता है।

आत्ममाया—शुद्धाद्वैतदर्शन के अनुसार आत्ममाया ब्रह्म की सर्वभुवन-समर्थ-रूपा शक्ति है। यह परब्रह्म के अतिरिक्त और किसी के आश्रय में नहीं है। बल्लभाचार्य ने इसके दो रूप बताए हैं—एक विद्या-माया और दूसरी अविद्या माया। भगवान् की ये दो शक्तियाँ ही क्रमशः जगत् और संसार का प्रसार करती हैं। अविद्या माया के अधीन जीव है, विद्या माया भगवान् के अधीन है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहक शक्ति, सूर्य और उसकी प्रकाश-शक्ति भिन्न नहीं है, उसी प्रकार आत्ममाया परब्रह्म की दासी एवं उससे अभिन्न है। अविद्या माया से बद्ध जीव विद्यामाया के द्वारा संसार से छुटकारा पा सकता है।

पुष्टिमार्ग

बल्लभ के दार्शनिक विचारों को शुद्धाद्वैतवाद कहते हैं और उनके भक्तिमार्ग को पुष्टिमार्ग कहा जाता है। दार्शनिक विचारों के लिए भले ही बल्लभ विष्णुस्वामी के ऋणी रहे हों, किंतु पुष्टिमार्गीय भक्ति का निरूपण उन्होंने भक्ति-ग्रन्थों से संकेत ग्रहण करके भी अपनी मौलिक प्रतिभा के बल से किया है।

बल्लभ सम्प्रदाय में यह बात प्रसिद्ध है कि आचार्य बल्लभ को इस पुष्टिमार्ग के निरूपण की आन्तरिक प्रेरणा हुई थी। 'संप्रदाय प्रदीप' नामक ग्रन्थ में लिखा है—''अन्य सम्प्रदायों (रामानुज आदि) में पंचरात्र, नारद आदि शास्त्र-प्रतिपादित उपासना-पद्धतियों का प्रचार होने से यद्यपि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है, तथापि वह भी मर्यादा-मार्गीय है। अब आप (बल्लभाचार्य) ने पुष्टि (अनुग्रह)-मार्गीय आत्मनिवेदन-द्वारा प्रेम-स्वरूपा सगुण भक्ति का प्रकाश करना है। सम्प्रति भक्ति सम्प्रदाय शांकर सिद्धांत के प्रचार से पथभ्रष्ट हो रहे हैं। अतः इसके

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

लिए आप ही उद्धार का कार्य सम्पन्न कर सकते हैं ।'' इससे यही सिद्ध होता है कि बल्लभाचार्य ने पूर्व-आचार्यों के मर्यादा मार्गों से भिन्न रूप में अपने पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना की ।

पुष्टिमार्ग के नामकरण की प्रेरणा बल्लभाचार्य को संभवतः भागवत से मिली होगी । वैसे कठोपनिषद् में भी स्पष्ट कहा है कि ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर के अनुग्रह पर ही निर्भर है । भगवदनुग्रह या भगवत्कृपा की महिमा तो वेदों में भी प्रकट हुई है । पर भागवत के द्वितीय स्कन्ध, दशम अध्याय के चतुर्थश्लोक में पुष्टि अथवा पोषण का विशेष उल्लेख हुआ है—''अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टि में भक्तों पर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है पोषण ।'' यहाँ पोषण तदनुग्रह—भगवान् के अनुग्रह को ही जीव का वास्तविक पोषण माना गया है । श्री बल्लभाचार्य ने कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों अंगों को माना है, किन्तु उनमें भक्ति को विशेष महत्त्व दिया है । उनके अनुसार कर्म-काण्डीय केवल स्वर्ग प्राप्त करता है, ज्ञानी अक्षर ब्रह्म को ही प्राप्त करता है, किन्तु भक्त पूर्णपुरुषोत्तम में लीन होकर उनकी नित्य लीलाओं का आनन्दानुभव करता है । कर्ममार्गी स्वर्गादि लोकों को पाकर फिर मर्त्यलोक में आता-जाता है, किन्तु पुष्टि-मार्गीय भक्त इस संसार के प्रपंच में फिर नहीं आता ।

अपने दार्शनिक मतवाद की प्रतिष्ठा के साथ ही बल्लभाचार्य ने सोचा कि मस्तिष्क-प्रधान मनुष्य ब्रह्म के विशुद्ध रूप को प्राप्त करके संसार से मुक्त हो जाएगा परन्तु हृदय-प्रधान भावुक व्यक्ति किस प्रकार संसार से मुक्त होंगे ? ज्ञान और योग के साधन कलि से प्रताड़ित जीवों के लिए कष्टसाध्य हैं, यह विचार कर बल्लभाचार्य ने प्रेम-मार्ग के सरल उपाय को अपनाया, क्योंकि प्रेम ही ऐसा तत्त्व है जिससे मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी तक प्रभावित होते हैं । अतः इस प्रेम-तत्त्व के द्वारा जीव सरलता से कृष्णासक्त होकर मुक्त हो सकता है । 'अणुभाष्य' में उन्होंने कहा है – ''**कृतिसाध्यं ज्ञानमुक्तिरूपं शास्त्रेण बोध्यते । ताभ्यां विहिताभ्यां मुक्तिर्मर्यादा । तद्विहितानामपि स्व-स्वरूपबलेन स्वप्रापणं पुष्टिरित्युच्यते ।**'' अर्थात् शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान से मुक्ति मिलती है और भक्ति भी ज्ञान के साधन से ही प्राप्त होती है । इन साधनों से प्राप्त हुई मुक्ति का नाम मर्यादा है । ये साधन सर्वसाध्य नहीं हैं । अतः अपनी ही शक्ति से ब्रह्म जो मुक्ति भक्तों को देता है, वह पुष्टि कहलाती है ।

बल्लभाचार्य के अनुसार जीव जब पूर्णतया भगवान् पर आश्रित हो जाता है, अपनी समस्त भावनाएँ और इच्छाएँ तथा सर्वस्व भगवदर्पण कर देता है, तब भगवान् उस पर परमानुग्रह करते हैं और उसके साथ नित्य-लीला करते हैं । यह नित्य-लीला-स्वरूप-प्राप्ति पुष्टिमार्ग का सबसे बड़ा लक्ष्य है । पुष्टिमार्ग में आने के लिए आवश्यक है कि जीव लोक और वेद के प्रलोभनों से दूर हो जाय । यह तभी हो सकता है जब वह कृष्ण के प्रति सर्वभावेन समर्पण कर दे । यह सर्वभावेन समर्पण ही पुष्टिमार्गीय भक्ति की चरमावस्था है । इसी समर्पण से इस मार्ग का आरम्भ और भगवान के स्वरूप का अनुभव होता है, तथा लीला-सृष्टि में प्रवेश हो जाने पर अन्त । बीच का मार्ग सेवा-द्वारा प्राप्त होता है, जिससे जीव की रही-सही ममता, अहंमन्यता आदि का नाश ही

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अभिप्रेत है। श्रीकृष्ण ही परम इष्ट हैं। उनकी प्राप्ति के लिए इस समर्पण और सेवा-भाव के आदर्शरूप में गोपीजन की प्रेम-भावना की मान्यता है।

वल्लभ सम्प्रदाय या पुष्टि मार्ग के सबसे प्रसिद्ध व्याख्याता श्री हरिराय जी पुष्टिमार्ग के विषय में लिखते हैं —"जिस मार्ग में लौकिक, सकाम तथा निष्काम सब साधनों का अभाव है, जहाँ श्रीकृष्ण की स्वरूपप्राप्ति ही साधन और साध्य दोनों हैं, उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। जिस मार्ग में सब सिद्धियों का साधन भगवान का अनुग्रह ही है, जहाँ देह के अनेक सम्बन्ध भगवान की इच्छा पर छोड़ दिये जाते हैं, जिस मार्ग में भगवद्-विरह की अवस्था में भगवान की लीला के अनुभव-मात्र से संयोगावस्था का सुखानुभव होता है, और जिस मार्ग में सब भावों में लौकिक विषयों का त्याग है और उन भावों के सहित देहादि का भगवान को समर्पण है, वह मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है।" जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, पुष्टिमार्ग में गोपीजनों की ही भक्ति को आदर्श माना गया है। वे ही कृष्ण से सच्चा प्रेम करती थीं, उन्होंने ही कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया था। अतः आचार्य जी ने कहा है कि पुष्टिमार्गीय भक्त को गोपियों के ही आचरण का अनुसरण करना चाहिए। गोपीजनों के सुख-दुख, हर्ष-शोक, संयोग-वियोग आदि भावों को अपने अन्तरमन में अनुभव करने की शक्ति भक्तों में होनी चाहिए। 'निरोधलक्षणम्' में आचार्य जी ने अपने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

यच्च दुखं यशोदाया नन्दादीनाम् च गोकुले ।
गोपिकानाम् च यद्दुखं तद्दुखं स्यान्मम क्वचित् ॥१॥

अर्थात् "जो दुःख यशोदा नन्दादि को तथा गोपियों को गोकुल में हुआ था, वह दुःख, तथा जो सुख गोपियों एवं समस्त ब्रजवासियों को हुआ था, वह सुख हे भगवान! मुझे कब अनुभव होगा? उद्धव के आने पर वृन्दावन और गोकुल में जो महान समारोह हुआ, वह क्या मेरे मन में कभी होगा?"

गोपियों तथा ब्रजवासियों के प्रेम का आदर्श पुष्टिमार्गीय भक्त सदैव अपने सम्मुख रखता है। यही कारण है कि पुष्टिभक्त-कवि कृष्ण के चरित्र तथा उसकी लीलाओं में वैसा ही आनन्द लेना चाहता है, जैसा गोपियाँ लेती थीं। इसी से इन कवियों ने कृष्ण की ब्रज-लीलाओं का सच्ची अनुभूति से वर्णन किया है।

पुष्टिमार्गीय जीवों की तीन अवस्थाओं —पुष्टि-प्रवाह, पुष्टि-मर्यादा तथा पुष्टि-पुष्ट —के अनुसार पुष्टिमार्ग में तीन ही प्रकार की गोपियाँ मानी गई हैं— १. ब्रजांगनाएँ, २. कुमारिकाएँ, ३. गोपांगनाएँ। ब्रजांगनाओं ने श्री कृष्ण की भक्ति बाल-रूप में की। अतः उनकी भावना वात्सल्य भावना थी। पुष्टिमार्ग में इसी से नित्य-सेवा-विधि में भी वात्सल्य भाव का महत्त्व है। दूसरी कुमारिकाओं ने कात्यायनी आदि व्रतों-द्वारा कृष्ण की पति-रूप में उपासना की। उनका कृष्ण के प्रति स्वकीय भाव है। गोपांगनाओं ने वेद-लोक आदि के भय से मुक्त होकर परकीय भाव का अवलम्बन किया और सब धर्मों के त्यागपूर्वक शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम कृष्ण का ही साक्षात् भजन किया। इनकी भक्ति में सर्वार्पण होने से बल्लभ ने इनकी भावना को सर्वश्रेष्ठ माना है और इन्हें पुष्टिपुष्ट जीव कहा है। कुमारिकाएँ पुष्टिमर्यादा जीव हैं, क्योंकि

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

उन्होंने व्रत, मर्यादा आदि का पालन करते हुए कृष्ण की आराधना की। व्रजांगनाओं को पुष्टि-प्रवाह बताया गया है, क्योंकि ये अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को निभाती हुई वात्सल्यभाव से कृष्णानुराग रखती थीं। इन भेदों के कारण ही पुष्टिमार्ग में हमें वात्सल्य, सख्य और माधुर्य के दोनों रूप — कान्त-स्वकीय और कान्त-परकीय — भक्ति-भावनाएँ मिलती हैं।

पुष्टिमार्ग में मधुरभाव से भक्ति करने वाले भक्तों को सखीरूप माना जाता है, और सख्य भाव से भक्ति करने वालों को सखा। श्री कृष्ण की ललिता आदि मुख्य आठ सखियाँ मानी गई हैं, श्रीदामा आदि मुख्य सखा भी आठ ही हैं। अष्टछाप के भक्त-कवि बल्लभ सम्प्रदाय में 'अष्टसखान' और अष्ट सखियों के अवतार माने जाते हैं। इसी से सूरदास आदि का कृष्णलीला-गान सख्य भाव की भक्ति कही जाती है।

स्वामिनी और ठाकुर—पुष्टिमार्ग के प्रमुख सेव्य श्रीनाथ जी अथवा ठाकुर जी (कृष्ण) हैं। कृष्ण के नवनीतप्रिय बालरूप तथा किशोर रूप दोनों को सर्वप्रमुख स्थान मिला। पुष्टिमार्ग के अनुसार सब अवतार और देवी-देवता भी कृष्ण के ही अंग हैं। कृष्ण के अन्य सात रूप—मथुरेश, द्वारिकेश आदि भी पुष्टि मार्ग में अपनाए गए हैं, पर सर्वाधिक व्यावहारिक मान्यता व्रजेश को ही मिली।

आरम्भ में बल्लभ सम्प्रदाय में राधा को विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं था, किन्तु बाद में गोसाईं विट्ठल नाथ के समय में राधा का महत्त्व विशेष बढ़ा और राधा को परब्रह्म श्री कृष्ण की सर्व-भुवन समर्थ-रूपा शक्ति माना गया। गोसाईं विट्ठलनाथ ने 'स्वामिन्यष्टक' और 'स्वामिनी स्तोत्र' की रचना राधा की स्तुति में की। बल्लभ-सम्प्रदाय में राधा जी के अतिरिक्त श्री चन्द्रावली जी को भी स्वामिनी माना गया है। 'प्राचीन वार्ता रहस्य' में लिखा है—"सो व्रज में श्री स्वामिनी जी और श्री ठाकुर जी आपु में दोउ एक रूप में हैं, परन्तु व्रज-लीला प्रकट करिबे को श्री ठाकुर जी श्री नंदराय जी के घर प्रकटे और श्री स्वामिनी जी श्री वृषभानु जी के घर प्रकट होये के अनेक उपाय मिलिवे को रात्र दिन किए।"

आरम्भ में कृष्ण के बालरूप तथा वात्सल्य भाव की भी पर्याप्त महत्ता रही, पर बाद में माधुर्य भाव की प्रमुखता हो गई। यही कारण है कि आरम्भिक सूरदास, परमानन्ददास के पदों के विपरीत नन्ददास आदि परवर्ती अष्टछापी कवियों ने वात्सल्य भाव का विशेष चित्रण नहीं किया।

पुष्टि सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ "प्रस्थान चतुष्ट्य" हैं। हमारे यहाँ 'प्रस्थान-त्रयी'—वेद-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता पहले से ही मान्य थे। बल्लभाचार्य ने 'भागवतपुराण' को और मिलाकर 'प्रस्थान चतुष्ट्य' बना दिया। इस प्रकार भागवत पुराण को पुष्टिमार्ग में विशेष स्थान मिला। एक तरह से भागवतपुराण पर ही यह सम्प्रदाय और इसके कवियों का काव्य विशेष रूप से आधृत है।

पुष्टिमार्गीय सेवा—बल्लभाचार्य की प्रेम-लक्षणा भक्ति में भगवत्प्रेम की द्योतक कुछ सेवा-विधियाँ भी स्वीकृत हैं। सांसारिक सुख-दुःख की निवृत्ति तथा कृष्णानुराग की प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए बल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गीय सेवा पर बल दिया। उन्होंने

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कृष्ण-सेवा के दो भेद किए—१. क्रियात्मक सेवा, २. भावात्मक। क्रियात्मक सेवा-विधि के वित्तजा अर्थात् धन से सेवा और तनुजा अर्थात् शरीर से सेवा—ये दो भेद हैं। ठाकुर जी का मन्दिर बनवाने या शृंगारादि प्रसाधनों को जुटाने में आर्थिक योग-दान वित्तजा सेवा है। ठाकुर जी के मन्दिर में सफाई करना, ठाकुर जी के वस्त्र सीना, स्नान कराना, शृंगार करना आदि कार्य तनुजा सेवा कहलाते हैं।

भावात्मक सेवा को मानसिक सेवा भी कहते हैं। इसके भी दो रूप बल्लभाचार्य ने माने—१. मर्यादामार्गीय सेवा, २. पुष्टिमार्गीय सेवा। बल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गीय सेवा को अधिक उत्तम बताया है। मन, वचन और कर्म सब विधि से कृष्णार्पण और कृष्ण-लीलाओं में लीन होना ही पुष्टिपुष्ट मानसी सेवा है।

कृष्ण की उपर्युक्त सेवा-विधियाँ नित्य और वर्षोत्सव—दो प्रकार की हैं—

(क) **नित्य की सेवा-विधियां**—प्रातः से शयन तक ठाकुर जी की नित्य सेवाएँ चलती हैं जो आठ अंगों में इस प्रकार हैं—

१. मंगला : इसमें कृष्ण को जगाने कलेऊआदि खिलाने और उसकी आरती का विधान है। २. शृंगार : इसमें कृष्ण के नहलाने, साज-सज्जा आदि का विधान रहता है। ३. ग्वाल : यह कृष्ण का ग्वाल वेश बनाकर गो-चारण के लिए वन में भेजने की क्रिया है। ४. राजभोग : कृष्ण को भोजन कराना। ५. उत्थापन : कृष्ण को नट-वेश में सजाना। ६. भोग : कृष्ण को फिर भोजन कराना। ७. संध्या-आरती। ८. शयन।

(ख) **वर्षोत्सव विधियां**—इनमें षड्ऋतुओं के उत्सव – रास, होली, हिंडोला आदि तथा अनेक त्यौहार, मकर संक्रांति आदि पर्व, अन्य अवतारों की जयंतियाँ इत्यादि उत्सव-पर्व आते हैं।

सेवा के विविध अंग—पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रधान तीन अंग – राग, भोग और शृंगार होते हैं। आचार्य जी का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति इन तीनों सांसारिक विषयों में फँसा हुआ है। इसलिए इनसे छुटकारा पाने के लिए इन तीनों विषयों को भगवान् की सेवा में लगाकर इनको भी कृष्ण-निमित्त बना देना चाहिए। उनका मत है कि इन व्यसनों को भगवद् रूप बना देने से इनका सांसारिक विष समाप्त हो जाता है और इस रूप को अपनाकर प्रत्येक मनुष्य गृहस्थ होते हुए भी जीवन-मुक्त हो सकता है। यह सेवा-विधि यद्यपि बल्लभाचार्य ने ही शुरू की थी, तथापि इसकी समुचित व्यवस्था और इसके व्यावहारिक क्रियात्मक विस्तार का श्रेय गोसाईं विट्ठलनाथ को है। इन सेवाओं का महत्त्व होने से ही अष्टछापी कवियों का अधिकांश काव्य कृष्ण की नित्य और वर्षोत्सव लीलाओं या सेवा-विधियों के लिए कीर्तन-रूप में ही प्रकट हुआ है।

पुष्टिमार्ग और सदाचार—पुष्टिमार्ग तो सदाचार-निरपेक्ष या सदाचार-विरोधी मानना भ्रांति ही है। वास्तव में परवर्ती भक्तों और पुजारियों में जो चारित्रिक बुराइयाँ आ गईं, उनको देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि इस सम्प्रदाय में भक्ति के नाम पर विलास-लीला थी। पुष्टिमार्गीय सेवा-विधान में आचार तत्त्व की

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

उपेक्षा नहीं पाई जाती । स्वयं आचार्य वल्लभ ने सदाचार दो प्रकार का बताया है : १. बहिरंग और २. अन्तरंग । बहिरंग में वर्णाश्रम के अनुसार शौचादि कर्मों द्वारा पवित्र होना है। अन्तरंग में सत्य, दया एवं अहिंसा आदि हैं । अन्तरंग आचारों के बिना बहिरंग आचार पूर्ण पाखंड माने गये हैं । श्रीकृष्ण की क्रियात्मक सेवाओं के विधान में वल्लभ ने सदाचार का महत्त्व माना है। वैसे वास्तविक बात यह है कि पुष्टिमार्गीय भक्ति समर्पण का वह रूप है जिसमें आचारादि बाह्य बातें सोचने के लिए अवकाश ही नहीं रहता । श्री वल्लभाचार्य ने तो अनेक स्थलों पर अपने ग्रन्थों में स्पष्ट कहा है कि 'विषयों से आक्रांत मनुष्यों के मन में प्रभु का आवेश कभी नहीं होता । सुबोधिनी टीका में भी वे स्पष्ट कहते हैं कि **'कामादिनाम् शिथिलत्व भक्ति-र्नोत्पत्स्यते'**—अर्थात् कामादि व्यसनों के होने पर भक्ति उत्पन्न नहीं होती ।

समर्पण और आत्मनिवेदन—ऊपर कहा जा चुका है, पुष्टिभक्ति में भक्त के भगवदनुग्रह-प्राप्ति के लिए आत्मनिवेदन और सर्वभावेन समणर्प का बहुत महत्त्व है । इस सम्प्रदाय में दीक्षित होने वाले व्यक्तियों से आरम्भ में जो प्रतिज्ञारूप में मंत्र कहलाया जाता था, उसका भाव इस प्रकार है : श्रीकृष्ण मेरा आश्रय है। सहस्रों वर्षों से श्रीकृष्ण से मेरा वियोग हुआ है । इस वियोग के कारण आनन्द तत्त्व मेरे में से तिरोहित हो गया। अब कृष्ण को देह-गेह, प्राण, अन्तःकरण, इन्द्रियाँ और उनके धर्म, पुत्र-कलत्र, वित्त, इहलोक-परलोक और आत्मासहित मैं समर्पित हूँ । मैं दास हूँ, कृष्ण ! मैं तुम्हारा हूँ ।''

भक्ति का स्वरूप—इस प्रकार के समर्पण के कारण ही पुष्टिमार्गीय भक्ति पूर्ण प्रेम-लक्षणा भक्ति है । प्रेम की सिद्धि विरह से होती है, इसलिए इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण अदि सभी साधन विरहात्मक हैं। आचार्य जी ने कहा है कि विरह से ही प्रेम-सिद्धि होती है । और प्रेम-सिद्धि होने पर लोक और वेद दोनों से भक्त विरक्त हो जाता है । आसक्ति की दृष्टि से पुष्टि भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—१. स्वरूपासक्ति, २. लीलासक्ति, ३. भावासक्ति ।

भगवान् की रास-लीला और उसके गोलोक धाम की प्राप्ति पुष्टिभक्ति का सर्वोच्च काम्य होता है, जिसे वह भगवदनुग्रह से प्राप्त करता है । अतः वल्लभ-सम्प्रदाय में रासलीला का बहुत महत्त्व है । इस जगत् में भगवान का लीलाधाम होने के कारण वल्लभसम्प्रदाय में **गोकुल** का महत्त्व बैकुण्ठ से भी अधिक है। यही कारण है कि व्रज भूमि का कण-कण, समस्त कृष्ण-लीला-स्थली, वहाँ के निवासी, वहाँ की भाषा, लता-पेड़, पशु-पक्षी, कुंज-निकुंज, गो-ग्वाल आदि सब का बहुत महत्त्व है और पुष्टिभक्त सब से अनुराग जताता है ।

Accession No. 12222
Class No. ....
Book No. ....
CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अष्टछापः महत्व और काव्यगत विशेषताएं

"अष्टछाप हिन्दी की अष्टधातु की मुद्रा है, जिसकी अमिट छाप हिन्दी भाषा और साहित्य पर बहुत गहरी है।" यही नहीं, यह अष्टछाप की ही विशेषता है कि मध्यकाल के विद्वेष, घृणा और पारस्परिक वैमनस्य के जलते वातावरण में उसने धर्म, दर्शन, भक्ति, काव्य और संगीत आदि कलाओं की ऐसी विमल, मधुर स्रोतस्विनी बहाई, जिससे सहृदय आजतक रससिक्त और आनन्दमग्न होते आए हैं। यह अष्टछाप ही है, जिसकी प्रेरणा से समस्त भारतीय जीवन कृष्ण-भक्ति के रंग में रंगा गया, चारों ओर मन्दिरों में कृष्ण-संकीर्तन की पवित्र, मधुर और संगीतमय ध्वनि गूंज उठी। हमारे धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक एवं सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन में अष्टछाप निःसंदेह एक जीवन-संचारिणी लहर बनकर आई। इसका, इसके प्रवर्त्तक आचार्यों और रस-सिद्ध कवियों का हिन्दी जगत् में विशेष महत्त्व है।

अष्टछाप बल्लभसम्प्रदाय का ही साहित्यिक रूप है। बल्लभाचार्य के पश्चात् गोसाईं विट्ठलनाथ ने बल्लभ-सम्प्रदाय को पूर्ण व्यवस्थित और संगठित करने का प्रयत्न किया। इसी साम्प्रदायिक व्यवस्था और प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अष्टछाप की स्थापना की।

बल्लभाचार्य-द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में अनेक भक्त दीक्षा ले चुके थे। गोसाईं विट्ठलनाथ जी के गद्दी पर बैठने के समय तक सूरदास आदि कई भक्त-कवि बहुत-से सुन्दर-सुन्दर पदों की रचना ठाकुर जी के चरणों में समर्पित कर चुके थे। उनमें से गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने सर्वोत्तम आठ कवि-गायकों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। उन्होंने चार अपने पिता बल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों और चार अपने प्रिय सेवकों को जो सम्प्रदाय में प्रभुलीला-गान की दृष्टि से सर्वप्रमुख थे, अष्टछाप में सम्मिलित किया और उन पर अपनी कृपा की छाप लगाई। बल्लभाचार्य के चार शिष्य थे—सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास और कृष्णदास। विट्ठलनाथ जी ने अपने प्रिय चार शिष्यों में गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास को छाँटा।

स्थापना-काल—अष्टछाप की यह स्थापना कब हुई, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डा० दीनदयाल गुप्त ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय' में इस प्रश्न पर विचार ही नहीं किया। श्री कंठमणि शास्त्री के अनुसार अष्टछाप की स्थापना संवत् १५९८ में हुई। किन्तु श्री द्वारिकाप्रसाद परीख सं० १६०२ को अष्टछाप का स्थापना-काल मानते हैं। 'प्राचीन वार्ता रहस्य' के एक चित्र से भी अष्टछाप का स्थापना-काल सं० १६०२ प्रकट होता है। वार्तासाहित्य से ही ज्ञात होता है कि गोसाईं विट्ठलनाथ सम्प्रदाय की गद्दी पर सं० १५९८ के पश्चात् ही बैठे। अतः उन्होंने भी गद्दी पर बैठने के कम-से-कम एक-दो वर्ष बाद ही अष्टछाप की यह ऐतिहासिक स्थापना की होगी। इसलिए सं० १५९८ अष्टछाप का स्थापनाकाल मान्य नहीं हो सकता। सं० १६०२ को स्थापना-काल मानने में भी भारी कठिनाई

Library Govt. College for Women Nawakadal, Srinagar.
CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

उपस्थित होती है। नन्ददास का जन्म सं० १५९० के लगभग सर्वमान्य है। उनका बल्लभसम्प्रदाय में दीक्षा का समय भी हमने सं० १६१६ के आसपास मानना ही उचित समझा है। अत: सम्प्रदाय में दीक्षा के समय (सं० १६१६ के आसपास) से पूर्व उनके साथ अष्टछाप की स्थापना का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। श्री प्रभुदयाल मित्तल ने भी भ्रमवश सं० १६०२ को अष्टछाप की स्थापना का समय मान लिया है।[1] मजे की बात यह है कि मित्तल जी विट्ठलनाथ जी का आचार्यत्व-ग्रहण सं० १६०७ में मानते हैं। उनका कथन है: "सं० १६०७ में विट्ठलनाथ जी को विधिपूर्वक पुष्टि-सम्प्रदाय का आचार्य बना दिया गया। अब वे साम्प्रदायिक उन्नति और ग्रन्थनिर्माण के कार्य में लग गए।"

'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' से पता चलता है कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी सं० १५९७ में गिरधर जी के प्राकाट्य के पश्चात् नन्द महोत्सव करके ब्रज में आए। उसी समय के लगभग कुंभनदास जी ने अपने नवजात पुत्र चतुर्भुजदास को, उसके जन्म के ४१वें दिन, स्वामी जी की शरण में भेंट किया था। जब नंददास का जन्म सं० १५९० प्राय: सर्वमान्य है और चतुर्भुजदास का सं० १५९७, तो फिर क्रमश: १२ और ५ वर्ष की अवस्था में उन्हें सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवि, 'गायनाचार्य और भक्त' कैसे मान लिया गया? अत: अष्टछाप का स्थापना-काल सं० १६०२ नहीं माना जा सकता। हमारा अनुमान है कि वैसे तो सम्प्रदाय में सूरदास, परमानन्ददास और कुंभनदास आदि चार-पाँच उच्च कोटि के भक्त-कवियों को वल्लभाचार्य के समय से ही प्रधानता मिली हुई थी, और उनमें भी सूरदास प्रमुख थे, परन्तु अष्टछाप की विधिवत् स्थापना सं० १६१६ के आपपास ही संभव हुई होगी। संभवत: नन्ददास अष्टकवियों में सब से बाद में दीक्षित हुए थे, अत: सं० १६१६ में नन्ददास को पाकर गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने अष्टसखान की माला की पूर्ति की होगी। इस समय आठों कवि जीवित थे और कोई अपने शैशवकाल में भी नहीं था।

अष्टछाप के उपर्युक्त कवियों का न केवल हिन्दी साहित्य में साहित्यिक महत्त्व है, अपितु पुष्टिसम्प्रदाय में उनका साम्प्रदायिक महत्त्व भी खूब था। इस सम्प्रदाय में, जैसाकि बताया जा चुका है, यह मान्यता रही है कि अष्टछाप के ये आठों भक्त-कवि ही श्रीनाथ जी के अंतरंग सखा हैं, जो उनकी नित्यलीला में सदैव उनके साथ रहते हैं, और ये अष्ट सखा श्रीनाथ जी के गोवर्द्धन पर्वत पर प्रकट होने के साथ ही उनकी लीला के हेतु भूलोक में अवतरित हुए हैं।

अष्टछाप का धार्मिक महत्त्व—अष्टछाप-काव्य का धार्मिक महत्त्व अक्षुण्ण है। भक्तिरस से पूर्ण इनके असंख्य पद आज तक भक्तों को भगवत्प्रेम से रस-सिक्त करते आए हैं। मध्ययुग के उस भक्ति से पूर्ण वातावरण की आज हम कल्पना ही कर सकते हैं, जबकि अनेक भक्तजन अष्टछापी कवियों के पद गा-गाकर मस्त हो जाते थे और प्रभु के चरणों में बड़े आनन्द से लोटते थे। अष्टछाप के कवियों की यह धार्मिक गूँज

---

१. अष्टछाप परिचय (श्री प्रभुदयाल मित्तल), पृ० ३२.

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

समग्र देश में फैली। सब स्थानों पर इस सरस भक्ति को बड़े आनन्द और चाव से अपनाया गया। वास्तव में इस भक्तिभावना की सरसता ने देश के कोने-कोने में गूँज फैला दी।

कर्मकाण्ड और ज्ञान-मार्ग की कष्ट-साधना एवं शुष्कता तथा निर्गुणवाद का विरोध करके इन भक्तों ने सगुण प्रेम-लक्षणा मधुरभक्ति की प्रतिष्ठा की। भारत के धार्मिक इतिहास में वैष्णवी भावना का इतना प्रचार और प्रसार संभवतः पहले कभी नहीं हुआ था, जितना इन अष्ट कवियों के सहयोग से १६वीं और १७वीं शताब्दियों में हुआ। निस्संदेह हमारी धार्मिक भावना को दृढ़ करने, उसे नया रूप देने, उत्तेजित करने और उसका समुचित प्रचार करने में अष्टकवियों का महत्त्वपूर्ण योग है। सैंकड़ों-हजारों वर्षों के निवृत्ति मार्ग को इन कवियों ने सरस प्रवृत्ति में परिवर्तित कर दिया।

कलात्मक देन—अष्टछाप की स्थापना में गोसाईं विट्ठलनाथ जी का उद्देश्य यही था कि प्रभु-लीला-गान से सम्बन्धित पदों का गायन मंदिरों में ठाकुर जी की झाँकियों के समय प्रतिदिन होता रहे। उन्होंने ठाकुर जी की पूजा के सभी स्थानों पर यह आज्ञा भेजी हुई थी कि अष्टसखान के लीला-पदों-द्वारा ठाकुर जी की भक्ति का यह क्रम निरन्तर चलता रहे। नित्य और नैमित्तिक अवसरों तथा वर्षोत्सवों पर कृष्ण-लीला-गान कीर्तनों द्वारा बराबर होता था। अष्टछाप की स्थापना के साथ संगीत-कीर्तन की उचित व्यवस्था हुई। अष्टछाप के प्रायः सभी कवि संगीत कला के मर्मज्ञ थे। अतः उन्होंने भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में संगीतमय पदों की रचना की। इनके पदों द्वारा कीर्तन की व्यवस्था करने वाले कीर्तनकारों को संगीत-शास्त्रानुसार गान, वाद्य, लय, स्वर, ताल आदि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक था। कीर्तनों की इस योजना से संगीत कला का विशेषतः संगीत की ध्रुपद आदि शैलियों का बहुत विकास हुआ। तानसेन-जैसे विश्व-प्रसिद्ध गवैये भी सूरदास आदि अष्टछापी कवियों की कला से प्रभावित हुए।

अष्टछाप की यह संगीत-माधुरी संगीताचार्यों एवं गायनाचार्यों को इतनी भाई कि बड़े-बड़े 'उस्तादों' ने—हिन्दू हों चाहे मुसलमान—उसको अपनाया। एक तरह से तानसेन-जैसे विश्व-विख्यात गवैये के निर्माण में भी अष्टछाप का महत्त्वपूर्ण योग है। संगीत कला, काव्य-माधुरी और प्रेम की सरस झंकार ने उस युग में ऐसा सम्मोहन-सा उत्पन्न किया कि हिन्दू तो क्या मुसलमान भी कृष्ण-प्रेम का राग अलापने लगे। अष्ट-छाप के कवियों की रचनाएँ भी इन गायकों द्वारा पर्याप्त सुरक्षित रहीं। अनेक कीर्तन-पद-संग्रहों, राग-रागनियों की पुस्तकों तथा गायक समाज में अष्टछाप की रचनाएँ सुरक्षित रहीं और अब भी सुरक्षित हैं। इस प्रकार संगीत कला और गायन-विद्या के विकास में अष्टछाप का महत्त्वपूर्ण योग है।

संगीत और गायन कला के अतिरिक्त अन्य कलाओं पर भी अष्टछाप का प्रभाव पड़ा है। चित्रकला, मूर्ति कला, वास्तु कला, कृष्ण के भोगादि की व्यवस्था के कारण पाकादि कलाओं को भी अष्टछाप द्वारा प्रोत्साहन मिला।

सामाजिक महत्त्व—अष्टछाप का सामाजिक महत्त्व भी है। यद्यपि यह सम्प्रदाय

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

और काव्यधारा भगवद् लीला से ही सम्बद्ध रहे और समाज की ऐहिक समस्याओं की ओर इन कवियों ने कोई ध्यान नहीं दिया और इस दृष्टि से उदात्त जीवन-तत्त्वों का इसमें प्रायः अभाव ही रहा तथापि समस्त हिन्दू जाति को कृष्ण-भक्ति-भावना की एक लड़ी में पिरोकर अष्टछापी कवियों ने जातीयता की भावना को दृढ़ करने तथा जातीय सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। विधर्मी संस्कृति और धर्म के आघातों से जाति की रक्षा का श्रेय निश्चय ही इस सम्प्रदाय और इसके कवियों को भी है। 'वल्लभ दिग्विजय' में एक प्रसंग इस प्रकार आता है कि सिकन्दर लोदी के अत्याचारी कर्मचारियों ने एक बार मथुरा में विश्रान्त घाट पर एक यन्त्र लगा दिया और यह घोषणा की कि जो भूल से भी उसके नीचे से निकल जाएगा, वह मुसलमान हो जाएगा। वल्लभाचार्य ने जब इस प्रकार हिन्दुओं को मुसलमान बनते देखा तो नगर के द्वार पर एक ऐसा यन्त्र बाँधा, जिसके नीचे से गुजरने के प्रभाव से मुसलमान बने हिन्दू फिर हिन्दू हो सकते थे। इस कथा में चाहे इतनी सत्यता न हो, फिर भी इससे यह निस्संदेह ज्ञात होता है कि आचार्य जी तथा अष्टकवियों ने हिन्दू धर्म के उस संकट-काल में इस्लाम से हिन्दू धर्म को बचाने का कितना स्तुत्य कार्य किया होगा ! हिन्दुओं में अपने परम्परागत शास्त्र-ग्रन्थों, वैष्णव धर्म, अपने अवतारों और धार्मिक विचारों के प्रति आस्था, श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न किया। रहीम, रसखान-जैसे मुसलमान दरबारियों में भी हिन्दू भावना और कृष्ण-प्रेम उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी इनके द्वारा हुआ। अकबर-जैसे मुगल शासक की प्रेम और सहिष्णुतापूर्ण नीति के निर्माण में भी अष्टछाप का योग मानना पड़ता है।

बहुत-से आलोचक इन कवियों की भक्ति में नैतिकता का अभाव मानते हैं, किन्तु यह बात पूर्ण सत्य नहीं है। विषय-वासनाओं के त्याग तथा आचरण की शुद्धता पर इन कवियों ने बल दिया है। कृष्ण-कृपा-प्राप्ति में सब प्रकार के विकारों को बाधक माना गया है। बाद के कृष्ण-कवियों ने अवश्य कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं को कामुकतापूर्ण बना डाला। अधिकांश अष्टछाप-काव्य आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है।

साहित्यिक महत्त्व—अष्टछाप काव्य का साहित्यिक महत्त्व सर्वविदित एवं सर्वमान्य है। वास्तव में प्राचीन हिन्दी साहित्य में यदि किसी एक काव्य-धारा का सर्वाधिक महत्त्व देखा जाय तो वह अष्टछाप-काव्य-धारा का ही दिखाई देता है। इसके द्वारा व्रजभाषा काव्य को विशेष प्रश्रय मिला। अष्टछाप की स्थापना से पूर्व व्रजभाषा-काव्य का न तो इतना प्रचार एवं प्रसार था, न उसमें साहित्यिक कलात्मकता का समावेश हुआ था। व्रजभाषा-काव्य का साहित्यिक प्रसार अष्टछाप की महत्त्वपूर्ण देन है। अष्टछापी कवियों के ही अनुकरण पर वैष्णवधर्म के कई अन्य सम्प्रदायों ने भी व्रजभाषा-काव्य की श्रीवृद्धि की। अष्टछाप के ही प्रसाद से हिन्दी कविता में व्रजभाषा की ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि न केवल भक्तिकाल और रीतिकाल, अपितु आधुनिक काल तक हम कृष्ण-काव्य का प्रणयन मुख्य रूप से उसी ढंग पर पाते हैं। आधुनिक युग के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास रत्नाकर जैसे रससिद्ध कवि अष्टछाप के ऋणी हैं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ब्रजभाषा के गद्य साहित्य और गद्यरूप की उन्नति का श्रेय भी किसी अंश में अष्टछाप को प्राप्त है। यद्यपि अष्टछापी कवियों ने स्वयं गद्य-रचना नहीं की, तथापि उनके प्रासंगिक चरित्र वार्तारूप में ब्रजभाषा गद्य में रचे गए, जिनका भाषागत महत्त्व होने के साथ-साथ ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'अष्टसखान की वार्ता' आदि कई ग्रन्थों द्वारा ब्रजभाषा गद्य का स्वरूप निर्मित हुआ।

अष्टछाप-काव्य का क्षेत्र सीमित है। केवल कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण ही इनका विषय रहा। परन्तु इस सीमित क्षेत्र में भी भाव, भाषा, रस और शैली आदि सभी दृष्टियों से इन कवियों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। अष्टछाप काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें भाव-प्रवणता खूब पाई जाती है। अष्टछाप-काव्य का भावपक्ष बहुत सबल है। जीवन के नाना पक्षों की ओर इन कवियों का ध्यान नहीं गया, क्योंकि उनका उद्देश्य केवल प्रभु-लीला-गान ही था। इसी कारण विभिन्न प्रकार के मानवीय भावों का वैसा समावेश इनमें नहीं हो पाया जैसा तुलसीदास के काव्य में पाया जाता है। पर अपने सीमित क्षेत्र में भावों की गहराई इनमें अपूर्व है। सूरदास, परमानन्द दास और नन्ददास इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं। यदि इनके काव्य की आध्यात्मिक ध्वनि ठीक अनुभव कर ली जाय, तो इस काव्य की उदात्तता में भी किसी को संदेह नहीं हो सकता।

इन कवियों ने रति भाव का बड़ा व्यापक एवं गम्भीर चित्रण किया है। अष्ट-छाप-काव्य का प्रमुख स्वर भगवत्प्रेम ही है। ये कवि मुख्यतः कोमल रसों के ही कवि हैं। रति के तीन प्रमुख रूप—वात्सल्य रति, दाम्पत्यरति एवं भगवद् रति का बहुत विस्तृत और गंभीर तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण इनके काव्य में मिलता है। शृंगार, भक्ति और वात्सल्य रसों को इन कवियों ने—विशेषतः अन्धे सूरदास, परमानन्ददास और नन्ददास ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। शृंगार रस या माधुर्य-भाव की इनके काव्य में प्रधानता है। सूरदास और परमानन्ददास ने वात्सल्य रस का भी व्यापक एवं मार्मिक चित्रण किया है। बाल-क्रीड़ा एवं बाल-मनोविज्ञान, माता के अन्तरतम का अथाह भाव-सागर तथा वात्सल्य के संयोग-वियोग दोनों पक्षों की अनेक मनोवैज्ञानिक झाँकियाँ जिस पूर्णता से सूरदास ने प्रस्तुत की हैं, वे विश्व-साहित्य में बेजोड़ हैं। न केवल प्रणयिणी गोपियों के अपितु वात्सल्यपूर्ण मातृहृदय के भी सूरदास अपूर्व पारखी थे।

ब्रजबिहारी कृष्ण की मधुर मूर्ति के सामने तानपूरा लेकर अंधे गायक सूरदास तथा उनके साथी कवियों ने न जाने कितने पदों में अपने भावोच्छ्वासों को संगीत-मयी लहरों में अपने प्रभु के चरणों में समर्पित किया है! श्री वियोगीहरि के शब्दों में, "उस युग में इन भक्त-सत्कवियों ने प्रेम-जाह्नवी की दिव्य-दिव्य धाराएँ बहा दी थीं। दसों दिशाओं में जगमोहन की मधुर-मधुर बाँसुरी गूँजने लगी थी। सहस्रों संसार-परितप्त जीव सुशीतल प्रेम-निकुंज की सुखद छाया में विश्राम और शान्ति पाने लगे। सैंकड़ों प्रेमोन्मत्त भक्त आपे को भूल कर नाच उठे थे।"

शृंगार रस के विभिन्न प्रसंगों के अनेक सुन्दर शब्द-चित्र, भावचित्र और ध्वनि-

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

चित्र सूर, नन्ददास और परमानन्ददास के काव्य में मिलते हैं। आगामी युग के रीति-श्रृंगार काव्य की पृष्ठभूमि के निर्माण में भी इन कवियों का महत्त्वपूर्ण योग है। श्रृंगार-रस का इनका चित्रण कुछ-कुछ शास्त्रीय ढंग का हो गया है। नन्ददास की 'रसमंजरी'-जैसी रचना ने नायिकाभेद की स्वतन्त्र रचनाओं की परिपाटी को भी प्रोत्साहन दिया। सभी प्रकार की नायिकाओं—स्वकीया, परकीया, अज्ञात-यौवना, मुग्धा, मध्यमा, प्रौढ़ा, ऊढ़ा, खण्डिता आदि का वर्णन इनके काव्य में मिलता है। पूर्वराग, मान, उपालंभ, प्रवास आदि विरह के सब रूपों का भी पूर्ण वर्णन पाया जाता है। इन कवियों का नखशिख-वर्णन भी बहुत विस्तृत है। काल, अवस्था और परिस्थितियों के अनुसार राधा-कृष्ण की रूपमाधुरी के अनेक शब्द-चित्र अष्टछाप काव्य में प्राप्य हैं। नायक कृष्ण के भी अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्य-चित्रण अष्टछाप के अतिरिक्त और कहाँ मिल सकता है? अपने उपास्यदेव के विविध अंगों का पृथक्-पृथक् वर्णन इन्होंने बड़ी मनोहारिता से किया है।

भक्तिभावना—समग्र अष्टछाप-काव्य भक्ति-भावना से ओत-प्रोत है। आध्यात्मिक संकेत इनके सभी वर्णनों में रहते हैं। वस्तुतः ये कवि भक्त पहले हैं, कवि बाद में। ये सभी सिद्ध कोटि के महात्मा थे। भक्ति के प्रायः सभी रूप इस काव्य में मिलते हैं। विनयभक्ति, माधुर्यभक्ति, वात्सल्य भक्ति, सख्यभक्ति और शांत भक्ति आदि सभी रूपों का आधार पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जिसमें प्रभु कृष्ण के प्रति सर्वभावेन समर्पण की भावना रहती है। इनकी भक्ति कृष्णलीलागान के रूप में ही प्रकट हुई है।

अष्टछाप काव्य का महत्त्व इस दृष्टि से भी बहुत अधिक है कि इसके कवि हिन्दी साहित्य में अनेक काव्य-परम्पराओं के प्रतिष्ठापक और प्रेरक हैं। हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य की परम्परा इन्हीं द्वारा विशेष प्रोत्साहित हुई। नखशिख-वर्णन, षड्ऋतु-वर्णन आदि पर स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना आगे के कवियों ने बहुत-कुछ इन्हीं के अनुकरण पर की। सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीत हिन्दी की उच्चकोटि की काव्य-रचनाएँ हैं। सगुणभक्ति की प्रतिष्ठा और निर्गुण के खण्डन का उद्देश्य रहते हुए भी इनके भ्रमरगीतों में प्रेम की शाश्वत पुकार पाई जाती है। सूर के भ्रमरगीत में भाव, भाषा, कला, वाग्वैदग्ध्य, व्यंगविनोद आदि का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। हास-परिहास और रुदन का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण साहित्य में विरल ही है। नारी-हृदय की अनेक दशाओं का मार्मिक मनोवैज्ञानिक चित्रण इस काव्य की विशेषता है। कथोपकथन की मनोरंजकता, शब्द-सजावट, संगीतलहरी, वाक्चातुर्य एवं दार्शनिकता की दृष्टि से नन्ददास का 'भंवरगीत' भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

अष्टछापी कवियों के हाथों हिन्दी गीति काव्य खूब समुन्नत हुआ। विद्यापति की पदावली से जिस गीत-माधुरी की मधुर संगीत-ध्वनि सुनाई दी थी, उसका विकास इन कवियों द्वारा ही हुआ। यद्यपि इनसे पूर्व संत कवियों ने भी सुन्दर पदों की रचना की थी, पर भाव-भाषा की कोमलता, संगीत-माधुर्य और भावप्रवणता का जैसा गुण सूरदास आदि अष्टछापी कवियों के पदों में पाया जाता है, वह अन्यत्र नहीं। हिन्दी में गीति-साहित्य को प्रौढ़ एवं पुष्ट करने में सूरदास का विशेष योग है। स्वयं गायक और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

संगीत-मर्मज्ञ होने के कारण इनके पद विविध राग-रागनियों में बँधे हुए हैं ।

अष्टछापी कवियों में सूरदास, नन्ददास और परमानन्ददास वृहद्त्रयी है । सूरदास और नन्ददास के अतिरिक्त अन्य छः कवियों का विशेष अध्ययन हिन्दी-जगत् में अब तक नहीं हुआ है । परमानन्ददास का काव्य भी नन्ददास के काव्य से किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं । सूरदास पर सर्वांगीण अध्ययन करते हुए अनेक हिन्दी-समीक्षकों तथा शोध-कर्त्ताओं ने अनेक ग्रन्थ रचे हैं, न्यत्र हम ने नन्ददास और परमानन्ददास—इन दो अन्य विशिष्ट कवियों का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है । श्रीप्रभुदयाल मित्तल ने तो परमानन्ददास को नन्ददास से भी श्रेष्ठ कवि मानते हुए कहा है—"अष्टछाप में सूरदास और परमानन्ददास के उपरांत नन्ददास की रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं । काव्य-परिमाण में नन्ददास की रचनाएँ परमानन्ददास के उपलब्ध पद-साहित्य से कुछ अधिक हैं । उनकी कुछ रचनाओं में परमोच्च श्रेणी का कवित्व है और कुछ में साधारण कोटि का । इसीलिए सब मिलाकर उनका काव्यमहत्त्व परमानन्ददास से कुछ कम है । अष्टछाप के शेष पाँच कवियों में क्रमशः कुंभनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास की रचनाएँ मध्यम श्रेणी की और गोविन्दस्वामी एवं छीतस्वामी की साधारण श्रेणी की हैं । इन पाँचों कवियों की रचनाएँ पूर्वोक्त तीनों कवियों की रचनाओं के समान नहीं हैं, किन्तु अन्य भक्त-कवियों की तुलना में इनका काव्य भी महत्त्वपूर्ण है ।"

अस्तु, यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि भाव-प्रकाशन की दृष्टि से अष्टछाप के सभी कवि अपना-अपना महत्त्व रखते हैं । अष्टछाप-काव्य का कलापक्ष सूरदास और नन्ददास-द्वारा विशेष रूप से समुन्नत हुआ । माधुर्य गुण की विशेषता इस काव्य की मुख्य विशेषता है । असंख्य पदों द्वारा इस काव्य में व्रजभाषा का जो परिष्कार और परिमार्जन हुआ है, वह युगों का कार्य सालों में सम्पादित होने के समान है ।

इस प्रकार अष्टछाप के काव्य का प्रभाव समस्त हिन्दी काव्य पर पाया जाता है । सूर की कविता संसार के महाकवियों के लिए भी स्पर्द्धा की वस्तु है । इन कवियों के ग्रन्थों में केवल काव्य-सौंदर्य ही नहीं है, केवल संगीत का ज्ञान ही नहीं है, कृष्ण-भक्ति का विविध रूप भी इनमें मिलता है । साहित्य-प्रेमी इनके काव्य का रसास्वादन करते हैं, संगीतज्ञ स्वर-साधना करते हैं, संगीतमर्मज्ञ इनको सुनकर प्रफुल्लित होते हैं और भक्त पढ़-सुनकर परम आनन्द प्राप्त करते हैं । कृष्णचरित को लेकर इतने प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा और भक्ति से यह काव्य रचा गया है कि इसकी तुलना विश्व के श्रेष्ठतम काव्य से की जा सकती है । इन कवियों की प्रेरणा से कृष्ण-काव्य समस्त भारतीय भाषाओं में सर्वत्र प्रचुरता से रचा जाने लगा । कृष्ण-चरित से सम्बन्धित जितना विपुल काव्य रचा गया, उतना किसी अन्य अवतार या विषय पर नहीं रचा गया । "आचार्यों की छाप लगी आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँचीं, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी । मनुष्यता के सौंदर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया ।"—आचार्य शुक्ल ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बल्लभसम्प्रदायी कवि

सूरदास—बल्लभ-सम्प्रदाय के सर्वप्रमुख कवि सूरदास का विशेष अध्ययन हमने अन्यत्र किया है, यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। प्रामाणिक अन्त:एवं बाह्य साक्ष्यों के अभाव से सूरदास का प्रामाणिक जीवन-वृत्त भी अन्धकार के गर्त में पड़ा है। वार्ता-साहित्य के अनुसार सूरदास सारस्वत ब्राह्मण जाति के थे। श्री हरिराय जी ने सूरदास को दिल्ली से चार कोस दूर सीही ग्राम का बताया है। अब अधिक विद्वान सीही को ही सूर का जन्म-स्थान मानते हैं। बल्लभ-संप्रदाय में यह बात प्रचलित थी कि सूर श्री बल्लभ से केवल १० दिन छोटे थे। इस आधार पर सूर का जन्म वैसाख शुक्ला पंचमी मंगलवार, सं० १५३५ सिद्ध होता है। सूरदास अन्धे थे, जन्मांध थे या बाद में अन्धे हुए—इस सम्बन्ध में भी मतभेद हैं। सूरदास के आत्म-कथनों तथा वार्ता-साहित्य से सूर के जन्मांध होने का ही आभास मिलता है। किन्तु सूरदास ने अंग-प्रत्यंग सौंदर्य, प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण, रंगों के सूक्ष्म ज्ञान तथा मानवीय सूक्ष्म भावानुभूतियों और क्रिया-चेष्टाओं का जो सजीव वर्णन किया है, वह किसी जन्मांध कवि के लिए संभवत: संभव न था। अधिकांश विद्वानों ने यह सूर के अंत: चक्षु तथा दिव्य-शक्ति की करामात मानकर सूर के जन्मांध होने का समर्थन किया है।

वार्ता-साहित्य में सूरदास के जीवन-सम्बन्धी अनेक अलौकिक चमत्कार-पूर्ण घटनाओं का उल्लेख हुआ है। गऊ घाट पर आचार्य बल्लभ से भेंट (सं०१५६७) के पूर्व ही सूरदास वैराग्य का जीवन बिताते थे और विनय-भक्ति के गीत रचते थे। कहते हैं कि सूरदास ने विनय का एक पद आचार्य बल्लभ को सुनाया। आचार्य बहुत प्रसन्न हुए, पर कहने लगे—"अरे सूर होय के काहे को घघियात है, कछु हरि-लीला पद गाव।" अत: सूरदास ने दास्यमूला विनय-भक्ति के स्थान पर कृष्ण-लीला-गान आरंभ कर दिया। इसी समय (सं० १५६७) सूरदास बल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हुए।

सूरदास का देहावसान कब हुआ, इस बारे में भी पर्याप्त मतभेद रहा है। कहा जाता है कि अकबर बादशाह ने सूरदास से भेंट की थी। यह भेंट १६३० वि० के आस-पास ही संभव हो सकती है। साथ ही वार्ता-साहित्य से यह भी प्रमाणित होता है कि सूरदास की मृत्यु के समय गो० विट्ठलनाथ उपस्थित थे। गोसाईं जी की मृत्यु १६४२ ई० में मानी जाती है। अत: सूरदास जी का देहावसान इससे पूर्व ही माना जा सकता है। अनुमान यही है कि सूरदास ने लगभग सौ वर्ष की आयु पाई थी और उनका देहावसान १६४२ वि० के आसपास हुआ होगा।

सूरदास जी की प्रामाणिक रचनाएँ तीन मानी जाती हैं—'सूर-सारावली', 'साहित्यलहरी' और 'सूरसागर'। 'सूरसारावली' ११०७ छन्दों की रचना है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे अप्रामाणिक माना था। पर अब यह धारणा खंडित हो चुकी है। 'सूरसारावली' का रचना-काल लगभग १६०२ वि० है। सम्पूर्ण रचना एक वृहद् होली-गीत है। 'सूरसागर' जैसे काव्य-गुण तो इसमें नहीं हैं, फिर भी रचना महत्त्वपूर्ण है। 'साहित्यलहरी' की रचना सूरदास ने नन्ददास के लिए की थी, इसका उल्लेख नन्द-दास के जीवन-वृत्त-प्रसंग में हो चुका है। ११८ पदों की यह रचना रस, अलंकार और

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नायिकाभेद की शास्त्रीय रचना है। रस की दृष्टि से यह शृंगार रस की ही रचना सिद्ध होती है, भक्ति की नहीं।

सूरदास की अक्षय कीर्ति का स्तम्भ उनका 'सूरसागर' है। यद्यपि 'सूरसागर' में एक लाख पद होने की बात प्रसिद्ध है जो अतिशयोक्ति ही कही जा सकती है, फिर भी 'सूरसागर' की पद-संख्या कई हजार है। 'सूरसागर' की जो प्रतियाँ द्वादश-स्कंधात्मक मिली हैं, उनसे उसे भागवत का अनुवाद मान लेने का भ्रम हुआ था। वास्तव में 'सूरसागर' कृष्ण-लीलाओं का स्वतंत्र संग्रह है। लिपिकारों ने ही उसे बाद में भागवत के अनुसार स्कंध-क्रम में प्रस्तुत कर दिया, 'सूरसागर' भागवत पर आवृत होते हुए भी भागवत का अविकल अनुवाद तो क्या छायानुवाद भी कम ही प्रतीत होता है। वास्तव में सूरदास जी ने अपनी प्रतिभा के बल से अनेक मौलिक प्रसंगों की उद्‌भावना की है और गृहीत अंशों में भी संशोधन, परिवर्तन-परिवर्द्धन के अतिरिक्त अपनी मौलिक कल्पनाएँ की हैं। भागवत पुराण के दशमस्कंध की सामग्री का विस्तृत वर्णन ही सूरदास का मुख्य उद्‌देश्य था। भागवत में राधा की स्थिति नहीं है, पर सूरदास ने कृष्ण की तरह राधा के भी बाल्यकाल से लेकर यौवनावस्था तक का विस्तृत चित्रण किया है। सूरदास ने अपनी रुचि तथा भक्ति-पद्धति के अनुरूप भ्रमरगीत आदि अनेक अन्य प्रसंगों को नव-जीवन प्रदान किया है। अतः 'सूरसागर' एक मौलिक रचना है।

अष्टछापी कवियों में क्या, सूरदास निर्विवाद रूप से सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। अष्टकवियों में सबसे ऊँचा, सबसे रसीला, सबसे कलात्मक और आकर्षक स्वर सूरदास का ही था। पुष्टिमार्ग या अष्टछाप काव्य की समस्त विशेषताएँ, समस्त उपलब्धियाँ सूर-काव्य में सर्वाधिक पाई जाती हैं। वात्सल्य, शृंगार, भक्ति आदि की जैसी मंजुल त्रिवेणी 'सूरसागर' में प्रवाहित हुई है, वैसी अन्यत्र नहीं। इन रसों और कोमल भावों के चित्रण में सूर बेजोड़ हैं। उनका 'भ्रमरगीत' एक अद्वितीय विरह-काव्य है। क्या रीति-काव्य-परम्परा और भ्रमरगीत-परम्परा के प्रतिष्ठापन, क्या संगीतपूर्ण सरस पदों की रचना, क्या ब्रजभाषा के उत्कृष्टतम साहित्यिक रूप के प्रयोग, क्या आलंकारिक सशक्त एवं कलात्मक अभिव्यक्ति, क्या चित्र और बिम्ब-शक्ति सब दृष्टि से सूरदास कृष्णकाव्य के मूर्द्धन्य कवि हैं। विविध राग-रागनियों में उन्होंने सरस गीतों की जो अमृत-वर्षा की, उससे आज तक भक्त, संगीतज्ञ और गायक रस-सिक्त होते आ रहे हैं। यहाँ हम सूर के काव्य की विशेषताओं का अधिक उल्लेख नहीं कर सकते, यही कहना है कि कृष्णकाव्य का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व सूरदास ने ही किया। न्यत्र हमने नन्ददास और परमानन्ददास के विस्तृत अध्ययन में कृष्णकाव्य की जो विशेषताएँ बताई हैं, उन सबसे सूरकाव्य ओत-प्रोत है।

परमानन्ददास—परमानन्ददास का विस्तृत परिचय हमने अन्यत्र पुस्तक में दिया है। सूरदास के बाद गीतकार के रूप में परमानन्ददास का सर्वाधिक महत्त्व है।

कुम्भनदास—कुम्भनदास सभी अष्टछापी कवियों में आयु में सबसे बड़े थे। उनका पुत्र चतुर्भुजदास भी इसी अष्टछाप का भक्त-कवि हुआ। कुम्भनदास का जन्म सं० १५२५ को गोवर्द्धन के पास एक ग्राम में हुआ था। बल्लभाचार्य के चार प्रमुख

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

शिष्यों में ये भी एक थे। कुम्भनदास ने सूरदास से भी दीर्घायु पाई थी क्योंकि इनका देहावसान भी सूरदास की मृत्यु के लगभग साथ ही माना जाता है। ये बहुत बड़े गृहस्थ थे। इनके सात्त पुत्र थे। फिर भी ये अनासक्त-भाव से गृहस्थ-धर्म और आसक्त-भाव से भक्ति-मार्ग का अवलंब करते रहे। कहते हैं इनकी प्रसिद्धि सुनकर बादशाह अकबर ने इन्हें फतेहपुर सीकरी बुलाया था। इनके केवल दो सौ के लगभग पद ही कांकरौली के विद्या-विभाग में प्राप्त हैं। इन्होंने भी सुन्दर व्रजभाषा का प्रयोग किया है। कवित्व-शक्ति सामान्य कोटि की है। विषय कृष्ण-प्रेम, सौंदर्य, शृंगार, कृष्ण-लीला-वर्णन ही है। इनके पद का एक नमूना देखिए :

नैन भरि देखौं नन्दकुमार।
ता दिन तें सब भूलि गई हौं, बिसर्यौ पन परिबार॥
बिन देखे हौं बिकल भई हौं, अंग अंग सब हारि।
तातें सुधि है सांवरि मूरति की लोचन भरि-भरि वारि॥
रूप-रासि पै मित नहीं मानौं, कैसे मिलै लौं कन्हाई।
'कुंभनदास' प्रभु गोवरधन घर, मिलियै बहुर री माई॥

कृष्णदास—कृष्णदास भी आचार्य वल्लभ के प्रमुख चार शिष्यों में थे। इनका जन्म सं० १५५३ में गुजरात के चिलोत्तरा ग्राम में हुआ था तथा देहावसान लगभग सं० १६३५ में हुआ। इन्होंने अपनी किशोरावस्था में ही अपने घर वालों—माता-पिता का साथ छोड़कर भ्रमणशील वैरागी वृत्ति अपना ली थी। वल्लभाचार्य के प्रथम शिष्य कृष्णदास ही बने थे। संप्रदाय में कीर्तन-कवि की अपेक्षा कृष्णदास की अधिक प्रसिद्धि व्यवस्थापक के रूप में थी। श्रीनाथ जी के मंदिरों में ऐश्वर्य-वैभव की वृद्धि का कृष्णदास ने विशेष प्रयास किया। इन्होंने बल्लभाचार्य के साथ अनेक स्थानों का भ्रमण किया। धनिकों से श्रीनाथ जी के लिए भेंट एकत्र करने का काम इन्हीं को सुपुर्द था। बल्लभाचार्य जी की मृत्यु के बाद तो कृष्णदास विशेष अधिकारी बन गए थे। इनके जीवन से विदित होता है कि ये संप्रदाय के 'दादा' थे। इन्होंने बंगाली पुजारियों को मार-पीट से आतंकित कर भगा दिया था। श्रीनाथ जी को राजसी ठाठ प्रदान करने के लिए इन्होंने अनेक हस्तकला-शिल्पियों तथा हाथी, घोड़ा, रथ आदि सवारियों और ऐश्वर्य-साधनों को जुटाया था। इन्होंने रूपवती वेश्याओं और महिलाओं को भी कृष्ण-लीलाओं एवं रास-नृत्य में प्रविष्ट किया। कहा जाता है कि गंगाबाई से इनका गुप्त सम्बन्ध था। वार्तासाहित्य में कृष्णदास के चरित्र की निन्दा की गई है। अपने कुकर्मों के लिए इन्हें संभवत: जेल भी जाना पड़ा था। इसमें संदेह नहीं कि कृष्ण-भक्ति के पवित्र वातावरण को विलासिता से रंगने में कृष्णदास का बड़ा हाथ था। इन्होंने शृंगार के पद रचे। अन्य कवियों को भी कृष्ण की शृंगार-लीला का ही मुख्य चित्रण करने को प्रेरित किया। इन्होंने संयोग के संभोग पक्ष में ही अधिक रुचि ली। इनके कुछ फुटकर पद ही प्राप्य हैं।

गोविन्द स्वामी—गोविन्द स्वामी भरतपुर के सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १५६२ में हुआ था और देहावसान सं० १६४२ में माना जाता है। अपने यौवन-

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

काल में ही ये अपनी पत्नी तथा एक संतान को त्याग विरक्त होकर व्रज आ गए थे। ये लगभग सं० १५९८ में गो० विट्ठलनाथ से दीक्षित होकर बल्लभ-सम्प्रदायी बने थे और अष्टछाप के परवर्ती चार कवियों में चुने गए थे। तब से वे जीवन-पर्यन्त श्रीनाथ-जी की तनुजा और मानसी सेवा में लगे रहे। गोविन्द स्वामी अच्छे कवि-गायक थे। इनके सैंकड़ों फुटकर पद मिलते हैं। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का ही इन्होंने गान किया है। सम्प्रदाय के कीर्तन-कवियों में इनका बड़ा महत्त्व था। परमानन्ददास की तरह इन्होंने सरल, सरस व्रज भाषा का प्रयोग किया। नमूने की दो-चार पंक्तियाँ दी जाती हैं :

अब हौं या ढौटा तैं हारी।
गोरस लेत अटक जब कीनीं, हंसत देत फिर गारी॥
निसि-दिनहूं घर घेरी करत है, बालक-जूथ मझारी॥
'गोविन्द' बलि इमि कहति ग्वालिनी, ये बातें कैसे जात सहारी॥

छीत स्वामी—छीत स्वामी मथुरा के रहने वाले चौबे थे। कहते हैं ये आरम्भ में शोहदे थे और लौकिक रसिक वृत्ति रखते थे। इनका जन्म लगभग सं० १५७२ में हुआ था। और देहावसान गोवर्द्धन के निकट पूँछरी नामक स्थान पर सं० १६४२ में हुआ था। इस स्थान पर इनका स्मारक आज भी बना हुआ है। इन्होंने भी लगभग गोविन्द स्वामी के साथ सं० १५९८ में गोसाईं विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर बल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश किया था। ये गृहस्थ थे। इनके पूर्वज पुरोहिताई का काम करते थे। राजा बीरबल से इन्हें पुरोहित की वृत्ति मिलती थी। उसी से ये अपनी गृहस्थी चलाते थे। वार्ता में उल्लेख है कि जब बीरबल ने आचार्य बल्लभ और गोसाईं विट्ठलनाथ के प्रति अश्रद्धा के वचन कहे तो ये रुष्ट हो गए थे और वृत्ति को त्याग दिया था। इनके लगभग २०० भक्तिपूर्ण फुटकर पद ही मिलते हैं। कवित्व साधारण है। भाषा सरल एवं सरस है।

चतुर्भुजदास—कुंभनदास के सुपुत्र चतुर्भुजदास भी गोसाईं विट्ठलनाथ के कृपापात्र शिष्य थे। इनका जन्म सं० १५९७ में गोवर्धन के निकट जमुनावती ग्राम में हुआ था। इन्हें दस वर्ष की अवस्था में ही कुंभनदास ने गोसाईं विट्ठलनाथ के चरणों में समर्पित कर दिया था। बाल्यावस्था से ही पिता के भक्तिपूर्ण संस्कार इन पर पड़े। इनका देहावसान सं० १६४२ के बाद हुआ। ये जीवन-पर्यन्त श्रीनाथ जी की सेवा में समर्पित रहे। पिता के प्रभाव से अच्छे गायक और कवि बन गए थे। इनके पदों के तीन संग्रह—'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह', 'कीर्तनावली' और 'दान लीला' कांक-रौली में प्राप्य हैं। इन्होंने भी कृष्ण-लीला-गान किया जो भक्ति और शृंगार-चित्रण से रूप में है। कवित्व साधारण कोटि का ही है। भाषा सरल है।

नन्ददास—नन्ददास अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवि हैं। इनका विस्तृत अध्ययन हमने अन्यत्र किया है। इन अष्टछापी कवियों के अतिरिक्त बल्लभ-सम्प्रदाय के प्रभाव से रसखान आदि अनेक कवियों ने अपनी प्रेम-गंगा बहाई।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हरिदासी या सखी सम्प्रदाय

हरिदासी या सखी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास थे। कुछ विद्वान् इनका जन्म सन् १५०५ ई० में हुआ मानते हैं। पर सन् १५०५ ई० में इन्होंने अपने गुरु श्री आशुधीर से दीक्षा ली थी। सम्प्रदाय में ऐसा प्रसिद्ध है कि सन् १५१० ई० में इनके उपास्य बाँकेबिहारी जी का प्राकाट्य हुआ। कहते हैं श्री हरिदास जी ने बाँके बिहारी जी के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे। इन्होंने वृन्दावन में इन बाँके बिहारी की युगल उपासना को सखी-भाव से अपनाया। इसी से इनके सम्प्रदाय को सखी सम्प्रदाय भी कहते हैं। कुछ लोग हरिदास जी को निम्बार्क सम्प्रदायी मानते हैं। निम्बार्क सम्प्रदायी कवियों के काव्य-संग्रह 'निम्बार्क-माधुरी' में इन्हें तथा इनकी परम्परा के कवियों को सम्मिलित किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि हरिदास जी ने श्री आशुधीर से ही कृष्ण भक्ति व युगलोपासना की प्रेरणा ग्रहण की थी पर इन्होंने जिस स्वतन्त्र सूझ-बूझ से सखी-भाव का निरूपण किया, वह इन्हें अलग निज सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक सिद्ध करती है। सच तो यह है कि इन्हें निम्बार्क या किसी आचार्य के मत या दार्शनिक विचारों से विशेष प्रयोजन न था। इनका मार्ग भक्ति-मार्ग है। तत्त्वचिंतन—द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धांतों में वे नहीं उलझे। इनकी उन्होंने अवहेलना ही की। उनके अनुयायी भगवत रसिक की यह उक्ति यथार्थ है—

नहिं विशिष्टाद्वैत हरि, नहिं हरि द्वैताद्वैत।
बंधे नहिं मतवाद मैं ईश्वर इच्छा द्वैत॥

हरिदासी सम्प्रदाय में कृष्ण के कुंजबिहारी-रूप की मान्यता है। न तो द्वारिकावासी कृष्ण से इन्हें कोई सरोकार था, न मथुरावासी या ब्रजवासी बाल-कृष्ण से। नित्य कुंजविहारी कृष्ण का महत्त्व हरिदास जी ने ब्रह्म से भी बढ़कर माना है। स्वामी हरिदास रसोपासक थे। सम्प्रदाय में उन्हें ललिता सखी का अवतार माना जाता था। राधा-कृष्ण की जोड़ी नित्य है। जिस प्रकार सखी ललिता अपनी स्वामिनी जू तथा उनके लाडले कृष्ण की नित्य सेवा प्रेमभाव से करके प्रसन्न होती थीं, उसी प्रकार स्वामी हरिदास राधा-कृष्ण की प्रेमलीला-गान और अष्टयाम सेवा में प्रेमभाव से लीन रहकर अपने को धन्य मानते थे। लाल-लाडली के अन्तरंग कुंज-महल में ललिता की तरह स्थान पा लेना इस भक्ति की चरम अवस्था है। इस सम्प्रदाय में भी कई कृष्ण-भक्त कवि हुए हैं।

स्वामी हरिदास—स्वामी हरिदास जी श्री आशुधीर के शिष्य थे। कुछ विचारक इन्हें आशुधीर जी का पुत्र मानते हैं।[1] परन्तु 'निजमत सिद्धांत' नामक सम्प्रदायी ग्रन्थ तथा अन्य साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी हरिदास को आशुधीर जी ने दीक्षा देकर अपना शिष्य ही नहीं, पुत्र बना लिया था। हरिदास जी के पिता का नाम गंगादास और माता का नाम चित्रा था। राजपुर उनका स्थान था और वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। पर आशुधीर जी से दीक्षा लेने और उनके पुत्र बन जाने पर वे द्विज

---

१. देखिए, कृष्ण-भक्ति-काव्य में सखी-भाव (लेखक डा० शरण बिहारी गोस्वामी)।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

से गोसाईं हो गए थे। आशुधीर सारस्वत ब्राह्मण थे। आशुधीर जी के दो पुत्र थे—जगन्नाथ जी और गोविन्द जी, जो स्वामी हरिदास जी के भाई प्रसिद्ध हुए। स्वामी आशुधीर कोल के निवासी थे। दीक्षा लेने के बाद हरिदास जी यहीं रहने लगे थे। उनके नाम पर इस गाँव का नाम भी हरिदासपुर पड़ गया। यह गांव अलीगढ़ के पास है। स्वामी हरिदास जी ने लगभग सौ वर्ष की दीर्घ आयु पाई थी। उनका वर्तमान-काल पंद्रहवीं शताब्दी ई० के अंतिम चरणों से १६वीं शताब्दी ई० के अंतिम चरणों तक माना जा सकता है।

स्वामी हरिदास महान् संगीतज्ञ एवं परम रसिक भक्त थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन स्वामी हरिदास के शिष्य थे। स्वामी जी अत्यंत नि:स्पृह थे। अकबर-जैसे महान् शासक भी उनके द्वार पर दर्शनों की आशा से खड़े रहते थे। नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में स्वामी जी का परिचय देते हुए कहा है कि स्वामी हरिदास आशुधीर के 'उद्योतकर' थे, रसिक उनकी छाप थी, कुंजबिहारी राधाकृष्ण युगल को नित्य जपते और सखी भाव से युगल की केलि का अवलोकन करते थे। वे गायन-कला में गंधर्व थे, और अपने गीतों से राधा-कृष्ण की सेवा करते थे, उनके दर्शनों की आशा से राजा लोग उनके द्वार पर खड़े रहते थे —

जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत रहैं केलि, सखी सुख के अधिकारी।।
गान कला गंधर्व, स्याम-स्यामा को तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर-मर्कट तिमि पोषैं।।
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दरसन आसा जास की।
आशुधीर-उद्योतकर 'रसिक' छाप हरिदास की।।

रचनाएं - स्वामी हरिदास की केवल दो रचनाएँ प्राप्त हैं। केवल अठारह पदों की 'अष्टादश सिद्धांत' रचना है, जिसमें स्वामी जी ने अपनी भक्ति के कुछ सिद्धांत बताए हैं और दूसरी रचना 'केलिमाल' है, जिसमें अपने आराध्य-युग्म की श्रृंगारकेलि से सम्बंधित कुल ११० पद हैं। ये पद विविध रागों में इस प्रकार हैं—राग कान्हरे में ३०, केदारे में २२, कल्याण में १२, सारंग में ११, विभास राग १०, राग बिलावल में २, मलार ८, गौड़ २, बसंत ५, राग गौरी ६ और नट २।

सिद्धांत के पदों में स्वामी जी ने ये विचार व्यक्त किए हैं —१. हरि स्वाधीन हैं, जीव हरि-आधीन; सब उसी के वश में हैं २. जीव का मन भटकता है। हरि की कृपा से ही हरि की माया से पार पाया जा सकता है। ३. सब-कुछ त्याग कर हरि का भजन करो, हरि से प्रीत करो, उसी के पथ का अवलम्बन करना चाहिए। उसका प्रेमरंग अविनाशी है। ४. यह जग प्रभु की माया का खेल है। यह असार और स्वप्नवत है। ५. व्यर्थ जन्म बिताना मूर्खता है। जीवन की सार्थकता तो हरि को चित्त में अनन्यभाव से बसा लेने में है।

वस्तुतः 'केलिमाल' हरिदास जी की महत्त्वपूर्ण काव्य-रचना है। श्याम-श्यामा की नित्य 'केलि' की इस 'माल' में हरिदास जी ने १०८ या ११० पदों-रूपी मनकों को

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पिरोया है, जो प्रिया-प्रियतम के प्रेम-क्रीड़ा-श्रम जल का बना एक-एक मोती है। स्वामी हरिदास जी ने इन अंग-स्रवित जल-कणों को चुना है और वे इस अमूल्य निधि पर अपना तन-मन-धन सब न्यौछावर किए हुए हैं।

'केलिमाल' का विषय अत्यन्त सीमित है। प्रिया-प्रियतम का रूप-चित्रण, सहचरी के समक्ष प्रेम में लीन होना, पलक ओट न होने देना, मान से वर्जित करना, मानिनि श्यामा का श्याम द्वारा मनाया जाना, रूप-लिप्सा, मिलन, नृत्यमग्न होना, कुंज-निकुंजों में ऋतु-बिहार आदि ही 'केलिमाल' का विषय-पक्ष है। सभी सखीभाव-कवियों का केवल इतना-सा ही सीमित विषय रहा है। न इन्हें किसी घटना-क्रम की आवश्यकता थी और न जीवन और जगत् से कोई सरोकार था। यदि इन भक्त-कवियों की भक्ति-भाव-भूमि की कल्पना थोड़ी देर भी हमारे मन से निकल जाय तो यह समस्त काव्य ऐकांतिक शृंगार-प्रेम के सिवाय कुछ न लगे। उस हालत में उदात्त-भाव-तत्त्व भी तिरोहित प्रतीत होता है। 'रूप और रीझ की इस निकुंज लीला' का आध्यात्मिक आवरण यदि आज के बौद्धिक-भौतिक मानव के आगे से हट जाय तो रह जाता है केवल ऐकांतिक प्रेम-विलास। स्वामी हरिदास जी के पदों में फिर भक्ति और अध्यात्म की पवित्रता है, पर बहुत-से बाद के सखी भावोपासक संयम खो बैठे, जिसके कारण उनका काव्य लौकिक विलास-लीला-सा बनकर रह गया।

स्वामी हरिदास तथा सखी-भाव के अन्य उपासकों का काव्य भी माधुर्य-भाव के भक्ति-साहित्य की तरह मधुर रस का काव्य है। न तो हम इसे शृंगार-काव्य ही कह सकते हैं, क्योंकि इसका सम्बन्ध लौकिक नर-नारी-प्रेम से नहीं है, न इसमें भक्ति-रस की ही पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि भक्ति के लिए अनिवार्य पूज्य और श्रद्धा-भाव बहुधा इस काव्य में अत्यन्त क्षीण प्रतीत होता है।

स्वामी हरिदास जी के पदों में अनुभूति की तीव्रता, मधुर रस की मंजुलता, विशुद्ध सरल ब्रज भाषा की सानुप्रासिक सरसता, स्वाभाविक अलंकरण, प्रभावी लाक्षणिक प्रयोग, लोक-गीतों तथा शास्त्रीय गीत-शैली की संगीतात्मकता आदि अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। स्वामी जी की पद-शैली बड़ी स्वच्छंद है। सूर की तरह उसमें छंदोबद्धता नहीं। उन्होंने स्वच्छंदतापूर्वक पंक्तियों को छोटा-बड़ा रखा है। पर पद की प्रत्येक पंक्ति संगीत की लहरों पर सधी हुई है। पदों का नमूना देखिए—

शोभा-वर्णन : **आजु की बानिक प्यारे, तेरी प्यारी,**
तुम्हारी बरनी न जाय छवि।
इनकी स्यामता, तुम्हारी गौरता जैसे,
सित-असित वेनी रही भुवंगम ज्यों दवि॥
इनकौ पीताम्बर तुम्हारौ नील निचोल,
ज्यों ससि कुंदन जेवि रवि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी की शोभा,
बरनी न जाय जो मिलै रसिक कोटि कवि॥

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रूपासक्ति और मनुहार : **प्यारी तेरौ बदन-चंद देखैं, मेरे हृदै-सरोवर तै कुमुदिनी फूली।**
मन के मनोरथ तरंग अपार, सौंदर्यता तहां गति भूली।।
तेरी कोप-ग्राह ग्रसै लिये जात छुड़ायौ न छूटत, रह्यौ,
बुद्धि बल यह भूली।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा चरन बंसी गहि कढ़ि रहे,
लटपटाय गहि भुज भूली।।

२. श्री बीठल बिपुल जी

श्री बिपुल जी स्वामी हरिदास जी के मुख्य शिष्य थे। ये आशुधीर स्वामी के पौत्र और गोविन्द जी के पुत्र थे। इनका निकुंज-गमन (मृत्यु) स्वामी हरिदास के निकुंज-गमन के कुछ बाद हुआ। सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि ये अपने गुरु में इतनी भक्ति रखते थे कि उनका वियोग न सह सके और एक दिन रास-लीला में हरिदास जी के अभाव से दुखी होकर तत्काल देह त्याग दी। श्री नाभादास जी ने अपने भक्त-माल में तथा प्रियादास जी ने 'भक्ति-रस-बोधिनी' टीका में इन्हें रस-सागर कह कर इनकी प्रशंसा की है। इनके केवल ४० पद प्राप्य हैं। निस्संदेह प्रत्येक पद मधुर रस से भरा है। प्रिया-प्रियतम की बिहार-लीला ही इन पदों का विषय है। भाषा विशुद्ध सरल सरस ब्रज है। श्री बीठल बिपुल नित्य-बिहार-लीला के गायक थे। कुछ पदों में सुरतांत का वर्णन है। पदों का नमूना देखिए—

प्रेम-ठगौरी और मिलन :

तैं मोह्यौ प्यारी मेरौ लाल।
जिहि गुन सर्बस चोरि लियौ, नागरि, ते गुन अब प्रतिपाल।।
तैं कुछ प्रेम ठगौरी मेली, तुव मुख जोवत नैन बिसाल।
भामिनी कनकलता ह्वै लपटी बीठल-बिपुल उर स्याम-तमाल।।

३. श्री बिहारिनिदास जी

श्री बिहारिनिदास या बिहारी दास जी सखी सम्प्रदाय के प्रभावशाली महात्मा थे। ये स्वामी हरिदास जी तथा बीठल बिपुल के शिष्य थे। सखी-भाव की रीति और सिद्धांतों के स्पष्ट व्याख्याता-रूप में इनका महत्त्व सर्वोपरि है। ये एक-हथिया थे। सम्प्रदाय में आने और वैराग्य लेने से पूर्व ये अकबर के दरबारी कर्मचारी थे। अब्दुल-रहीम खानखाना से भी इनका सम्पर्क रहा था। संभवतः किसी युद्ध में ही इन्होंने एक हाथ खो दिया था। नाभादास जी, श्री हरिराम व्यास और ध्रुवदास जी ने बिहारिनिदास की प्रशंसा में क्रमशः छप्पय, पद और दोहे रचे हैं। सखी सम्प्रदाय में परिमाण और उत्कर्ष दोनों ही दृष्टि से बिहारिनिदास जी का काव्य सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है। इनकी वाणी में लगभग ६७३ साखियाँ हैं, १५१ सवैया, कवित्त और कुण्ड-लिया छन्द हैं, ७० चौबोले हैं तथा लगभग ३५० पद मिलते हैं। इनके दो सौ से ऊपर पद मधुर रस के हैं। शेष अधिकांश छंदों और पदों में सिद्धांत-कथन है। ये बड़े मन-मौजी और फक्कड़ थे। इनकी साखियों तथा सिद्धांत के पदों की अपेक्षा रस-सम्बंधी पदों की ब्रजभाषा अधिक माधुर्यपूर्ण है। पदों का नमूना देखिए—

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रूप-लिप्सा : **अंखियां लाल की ललचौंही ।**
इत-उत चितै हंसत सकुचत से बात कहत गहि गौही ।।
नैन-स्रवन-नासा अवलोकत भाल तिलक दरसौंही ।
श्री बिहारिनिदास स्वामिनी रस बरसत यह सुख समझति हौं ही ।।

४. श्री सरसदास जी

सरसदास जी श्री बिहारिनिदास के शिष्य थे। इनका निकुंज-गमन संवत् १६८३ माना जाता है। इन्होंने ७२ वर्ष की आयु पाई थी। इनके केवल २७ छंद और ३९ पद प्राप्य हैं। छंदों में भक्ति का महत्त्व और गुरु-महिमा-गान है तथा पदों में प्रिया-प्रियतम की बिहार-लीला। सुरत-बिहार का एक चित्र इस पद में देखिए—प्रिया के गोरे शरीर पर लाल वन-फूलों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, प्रिय उन्हें फूल समझकर बीनने के लिए अंग-स्पर्श करते हैं। प्रिया का हँसना, रोमांचित होना और प्रियतम का उसे अंक में भर लेना और सुरत-बिहार करना, कितना मादक चित्र है!

गोरे तन मैं प्रतिबिम्बत फूल बीनत लालबिहारी ।
जब-जब हाथ न परत तब ही हंसी जात प्यारी ।
अरबराइ अंकौ भरत, करत है छिन-छिन मनुहारी ।
सुर्रात-बिबस बिहरत दोऊ प्रीतम 'सरस' सदा बलिहारी ।।

५. स्वामी रसिकदास जी

सरसदास जी के शिष्य नरहरिदास थे और नरहरिदास के शिष्य श्री रसिकदास जी हुए। ये भी इस सम्प्रदाय के बड़े प्रभावशाली महात्मा थे। कहा जाता है कि इन्होंने ५२ शिष्य बनाये थे। रसिकदास जी ने पहली बार प्रिया-प्रियतम के प्रेम-प्रसंगों का विस्तार किया। ये अपने सम्प्रदाय की परिपाटी से ही बँधे नहीं रहे। इन्होंने वल्लभ सम्प्रदायी कृष्ण-भक्त कवियों की तरह श्याम-श्यामा के जन्म, बाल-लीला, विवाह आदि का भी वर्णन किया। इनकी ये आठ रचनाएँ प्राप्य हैं—१. गुरु-मंगल, २. बाल-लीला, ३. भक्ति-सिद्धांतमणि, ४. पूजाविलास, ५. वाराह संहिता, ६. रसार्णव पटल, ७. कुंज-कौतुक और ८. रस-सार। वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त इन पर राधाबल्लभीय सम्प्रदाय का भी प्रभाव प्रतीत होता है। स्वामी रसिकदास के पश्चात् इस परम्परा के कवियों में विशुद्ध निकुंज-भाव की अपेक्षा ब्रज का व्यापक विषय-पक्ष प्रकट होने लगा। श्यामा की प्रधानता का सूचक इनका एक पद देखिए :

प्यारी जू तैं मोंहि मोल लियौ ।
तेरी कृपा तैं मदन दल जीत्यौ तेरौ जिवायौ जियौ ।।
उमड़ी सेन महा मनमथ की तैं अधरामृत दियौ ।
'रसिक' बिहारी कहत दीन ह्वै धनि स्यामा कौ हियौ ।।

६. श्री ललित किशोरीदास जी

ललित किशोरीदास जी स्वामी रसिकदास जी के शिष्य थे, पर इन्होंने अपने गुरु की ब्रज-भाव-विस्तार की बात का विरोध किया और एक बार फिर हरिदास जी-

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

द्वारा प्रवर्तित विशुद्ध सखी भाव की केवल निकुंज-लीला को प्रधानता दी। अपने गुरु की परम्परा से हटकर इन्होंने अपना अलग टट्टी स्थान बनाया। इसी से बाद में सखी-सम्प्रदाय को टट्टी-सम्प्रदाय कहा जाने लगा। ललित किशोरीदास जी के शिष्य ललित मोहनीदास जी ने इस टट्टी स्थान की विशेष प्रतिष्ठा बढ़ाई। ललित किशोरी दास की वाणी में ३२८ साखियाँ, १०७ सिद्धांत के पद, १०८ लीला के सरस पद, ४ कवित्त-सवैये और ४ बधाइयाँ सम्मिलित हैं। इन्होंने स्वामी हरिदास के प्रति अपनी अनन्य भक्ति प्रकट की है। इनके लीला के पद अत्यन्त सरस, सरल एवं माधुर्यपूर्ण अनुभूति से ओत-प्रोत हैं। इस सम्प्रदाय के ये उच्च कोटि के कवि एवं रसिक भक्त थे।

७. श्री भगवत रसिक जी

श्री भगवत रसिक स्वामी हरिदास के प्रति अनन्य निष्ठा रखते थे। कहा जाता है कि ये स्वामी जी की वाणी तथा नित्य विहार-लीला से इतने प्रभावित हुए थे कि लाखों की सम्पत्ति, घर-बार छोड़ कर वृन्दावन आ गए और श्री ललितमोहनीदास जी की शरण ली। पर सम्प्रदाय के महन्तों के पारस्परिक झगड़े देखकर ये बहुत क्षुब्ध हुए और अपने कई शिष्यों के साथ वृन्दावन छोड़कर प्रयाग चले गए। प्रयाग में ही इन्होंने देह-त्याग किया। इनका वर्तमान-काल १८वीं शती ईसवी है। श्री भगवत रसिक प्रतिभावान् कवि थे। इन्होंने विविध छंदों—कवित्त, सवैया, कुण्डलिया, दोहा, छप्पय, चौबोला, अरिल्ल आदि—का बहुत सफल प्रयोग किया। इनकी पदरचना भी सफल रही। इनकी रचनाओं के नाम हैं—अनन्य निश्चयात्म, अनन्य रसिकाभरण, निर्विरोध मनोरंजन, नित्यविहार-युगल आदि। नमूने का एक रस का पद देखिए :

आज तो छबीली राधे रस-भरी डोलही।
सांवरे पिया के संग, भीजी है मदनरंग, मोद की उमंग अंग गुन गथ खोलही ॥
जैसे दामिनी घन मांही, ऐसे भामिनी तनु माहीं, लखि अपनी परछाहीं हंसि-हंसि बोलही ॥
भगवत लाल बिहारी, पाई है कहा वर नारी, गुण रूप बैस हमारी करत कलोल ही ॥

इनके अतिरिक्त हरिदासी सखी सम्प्रदाय से सम्बद्ध और भी अनेक कवि-रसिक-भक्त हुए हैं। कुछ के नाम ये हैं- आशुधीर जी के सुपुत्र श्री जगन्नाथ जी, श्री सहचरी शरण जी, श्रीमती बनीठनी जी, श्री रूपसखी जी, गोस्वामी बैन जी आदि। हरिदासी संतों की यह परम्परा बीसवीं शताब्दी तक अटूट रूप से प्राप्त होती है। बीसवीं शताब्दी के गोस्वामी जयबिहारी जी, गोस्वामी छबीले बल्लभ जी बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। हरिदासी सखी सम्प्रदाय की विशिष्टता यही है कि इसमें प्रिया-प्रियतम की निकुंज-लीला और ललिता आदि सखियों का भाव ही मुख्य रूप से व्यंजित हुआ है। इस सम्प्रदाय के भक्त-कवि स्वयं को ललिता आदि सखियों का प्रतिरूप बनाकर भाव-व्यंजना करते थे। समसामयिक राधाबल्लभ सम्प्रदाय में भी सखी-भाव की उपासना या भक्ति खूब प्रचलित हुई। इन सम्प्रदायों की समानता और भिन्नता पर आगे प्रकाश डाला गया है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

: ७ :

हितहरिवंश और राधाबल्लभ सम्प्रदाय

राधाबल्लभ सम्प्रदाय : अन्य सम्प्रदायों से तुलना

१६वीं शताब्दी के अन्त में श्री हितहरिवंश गोस्वामी ने कृष्ण-भक्ति के एक और वैष्णव सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया, जिसे राधाबल्लभ सम्प्रदाय कहते हैं। श्री हित-हरिवंश से पूर्व दक्षिणी आचार्यों द्वारा स्थापित चार वैष्णव सम्प्रदाय (रामानुज-सम्प्रदाय, मध्व-सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय और निम्बार्क-सम्प्रदाय) और उत्तर भारत के बल्लभ-सम्प्रदाय, श्री चैतन्य-सम्प्रदाय और हरिदासी सम्प्रदाय आदि विविध वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना हो चुकी थी। श्री हितहरिवंश ने इन सब सम्प्रदायों और उनकी साधना-पद्धतियों का अध्ययन-मनन करने के उपरांत अपना नया सम्प्रदाय स्थापित किया। इसमें संदेह नहीं कि श्री हितहरिवंश गोस्वामी अपने पूर्ववर्ती सभी वैष्णव सम्प्रदायों—विशेषत: कृष्णभक्ति के बल्लभ-सम्प्रदाय, चैतन्य-सम्प्रदाय और हरिदासी-सम्प्रदाय के ऋणी हैं, क्योंकि इन्होंने अपने सम्प्रदाय का स्वरूप निर्मित करने के लिए इन सम्प्रदायों से बहुत-कुछ ग्रहण किया और इसी से माधुर्य-भाव भक्ति, राधा की महत्ता, साधना-मार्ग आदि अनेक सैद्धान्तिक और साधनागत बातों में राधाबल्लभ-सम्प्रदाय की इन सम्प्रदायों से समानता है, तथापि अपनी विशिष्ट सेवा-अर्चा, इष्ट के विशिष्ट रूप तथा पृथक् विचार-सरणी आदि के कारण यह सम्प्रदाय अपना स्वतंत्र रूप एवं अस्तित्व रखता है।

माधुर्य-भक्ति—श्री हितहरिवंश ने माधुर्य-भक्ति को विशेष प्रश्रय दिया। माधुर्य-भक्ति की प्रतिष्ठा ब्रज में भी हितहरिवंश से पूर्व हो चुकी थी। बल्लभ संप्रदाय में महाप्रभु बल्लभाचार्य ने बाल-भक्ति या वात्सल्य और सखा-भाव को महत्ता प्रदान की थी, पर साथ ही माधुर्य-भाव भी ग्राह्य था। बाद में गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने माधुर्य-भाव को विशेष महत्ता प्रदान कर दी थी। फिर भी बल्लभ सम्प्रदाय का एक-मात्र प्रधान भाव माधुर्य-भाव नहीं बन सका था। बल्लभ सप्रदाय में वात्सल्य, सख्य, सखी (नंददास-कृत 'रूपमंजरी' में) तथा माधुर्य आदि सभी भाव ग्राह्य हुए।

माधुर्यभाव की प्रधानता चैतन्य या गौड़ीय सम्प्रदाय में भी स्वीकृत हो चुकी थी, पर बंगला वैष्णव भक्तों ने राधा के परकीया स्वरूप को अपनाया था और माधुर्यभक्ति में विरह भाव की प्रमुखता स्वीकार की थी। साथ ही चैतन्य संम्प्रदायी भक्तों का मुख्य इष्ट या आलम्बन श्रीकृष्ण ही थे, राधा की महत्ता स्वीकृत होते हुए भी गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा स्वतन्त्र रूप से अधिष्ठातृ आराध्या देवी का रूप नहीं पा सकी थी। राधाबल्लभ सम्प्रदाय में इसके विपरीत राधा के स्वकीया भाव को मान्यता मिली और राधा को श्री हितहरिवंश ने परम आराध्या स्वतन्त्र अधिष्ठातृ देवी का दर्जा प्रदान किया। साथ ही माधुर्यभाव के अन्तर्गत केवल संयोग-सुख का वर्णन हुआ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

इस दृष्टि से राधाबल्लभ सम्प्रदाय हरिदासी सखी सम्प्रदाय के अधिक निकट है। हरिदासी सम्प्रदाय में भी राधा की प्रतिष्ठा हो चुकी थी और प्रिया-प्रियतम की संयोग-निकुंज-लीला में ही हरिदासी भक्त आनन्दमग्न रहते थे । पर राधा के स्वतंत्र स्वरूप, भक्ति और आराध्यारूप की जैसी व्यापक प्रतिष्ठा श्री हितहरिवंश ने की, वैसी स्वामी हरिदास नहीं कर सके थे। राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा ही प्रधान उपास्या बनीं । कृष्ण का महत्त्व राधा के ही कारण माना गया। यहाँ कृष्ण भी राधा की आराधना करते हैं। राधा को कृष्ण पर वरीयता और उसे स्वतन्त्र आराध्या बनाने का यह श्रेय श्री हितरिवंश को ही प्राप्त है। श्रीराधाचरणारविन्द की भक्ति ही राधावल्लभीय भक्तों का एकमात्र साधन बनी । बल्लभ सम्प्रदाय तथा गौड़ीय सम्प्रदाय में माधुर्यभक्ति के अन्तर्गत गोपीभाव की प्रधानता है जबकि राधा-बल्लभ सम्प्रदाय में सहचरीभाव प्रधान है। राधाबल्लभ सम्प्रदाय में नित्य-संयोग की स्थिति ही मान्य है, वियोग तो क्षण भर को भी असह्य है । राधाबल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय में कृष्ण-गोपी प्रेम तथा विरह-भाव का सर्वथा अभाव है। श्री हितहरिवंश के ही अनुकरण पर राधाबल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त हरिदास व्यास ने अपनी 'रासपंचाध्यायी' के वर्णन में कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने और गोपियों के विरह-वर्णन को इसलिए छोड़ दिया है क्योंकि इस सम्प्रदाय में विरह-कथा में कोई सुख नहीं मोना जाता । व्यास जी ने कहा है :

रस में विरस जु अन्तर्धान गोपिनु कै उपज्यौ अभिमान ।
बिरह-कथा में कौन सुख ?

राधा की प्रधानता —जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इस सम्प्रदाय में श्री-राधा को आराध्य माना गया । गौड़ीय (चैतन्य) और बल्लभ सम्प्रदाय में प्रधान रति श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित की जाती है और उसी हेतु से राधामाधव की प्रेम-र्ल   का गान होता है । राधाबल्लभ सम्प्रदाय में प्रधान रति श्री राधा के चरणों में अर्पित की जाती है । श्री हितहरिवंश ने भी राधा को ही अपना 'प्राणनाथ' कहा है—'मेरे **प्राणनाथ श्रीश्यामा शपथ करौं तृण छिये** ।' 'श्री राधासुधानिधि' में हरिवंश जी ने स्पष्ट कहा है कि "करोड़ों नरकों के समान घृणित विषय-चर्चा से क्या लाभ ? श्रुतिकथा-श्रवण भी व्यर्थ का श्रम ही है और कैवल्य (मोक्ष) से तो मैं डरता हूँ । यदि शुकादि ऋषि-मुनि और भक्तगण परेश श्रीकृष्ण आदि के भजन में मस्त हैं तो मुझे इससे क्या मतलब ? मैं तो श्रीराधा के चरण-रस में अपने मन को डुबाना चाहता हूँ ।" (रा० सु० नि० ८३) ।

यद्यपि श्रीराधा का महत्त्व गो० विट्ठलनाथ जी के समय में बल्लभ-सम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग में भी बढ़ गया था, पर वहाँ श्रीराधा कृष्ण की ही सर्वशक्ति-स्वरूपा स्वामिनी थीं । बल्लभ सम्प्रदाय में राधा अंश ही है, अंशी तो श्रीकृष्ण ही हैं । सूरदास आदि पुष्टिमार्गीय कवियों ने राधा-कृष्ण की प्रकृति-पुरुष-रूप में मान्यता प्रकट करके भी उनके अभेद या अद्वैत की स्थापना की । बल्लभाचार्य ने राधा को कृष्ण की आह्ला-दिनी शक्ति के रूप में मानते हुए गोपियों को राधा का अंश कहा है । सूरदास आदि

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अष्टछापी कवियों ने राधा को अधिकतर स्वकीया माना है, पर उसके प्रेम की तीव्रता परकीया जैसी ही है। हरिवंश जी ने जिस राधिकापीठ की स्थापना की उसमें श्रीकृष्ण को भी श्री राधा के चरणों का संवाहन करते दिखाया गया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय की राधा श्रीकृष्णाराध्या एवं गुरुरूपा है। वह स्वयं पूर्ण शक्तिमान् है। चैतन्य और वल्लभ सम्प्रदाय की राधा कृष्ण-उपासिका है, जबकि राधावल्लभ सम्प्रदाय की राधा कृष्णोपास्या है।

स्वामी हरिदास जी ने भी श्री राधा के लाल-गुरु-रूप का वर्णन किया है। जहाँ व्यास जी (राधावल्लभीय) कहते हैं : **"प्रिय कौं नाचन सिखवत प्यारी"** और हरिवंश जी की श्रीराधा ललिता आदि सहचरियों की गुरु बनी उन्हें संगीत-नृत्य आदि की शिक्षा देती हैं, तो हरिदास जी की लाडली भी कुंजबिहारी को नचाती है, नृत्य सिखाती है —'**कुंज बिहारी नाचत नीके लाडली नचावत नीके**।' पर इतने पर भी हरिदासी सम्प्रदाय में श्रीराधा शक्तिरूपा ही हैं, शक्तिमान् श्रीकृष्ण ही हैं। स्वामी हरिदास के भी मुख्य आराध्य श्रीकृष्ण ही हैं। यह और बात है कि उन्होंने श्री 'राधा-संयुक्त कृष्ण अर्थात् युगल-स्वरूप को महत्ता प्रदान की।

श्री हितहरिवंश ने राधा का स्वरूप-वर्णन करते हुए कहा है कि श्रीराधा परम भाव-स्वरूप, परमरहस्य, पुँजीभूत रसामृत, निखिल निगमागम अगोचर, प्रेमानन्दघनाकृति, प्रेमोल्लास की सीमा, नवीनरूप-माधुर्य और लीला-माधुर्य की सीमा, सुख की सीमा और रति-कला-केलि की सीमाओं का सम्मिलन हैं।

(रा० सु० नि० १३०)

इसी राधा के चरणों की प्रधानता हितजी ने स्वीकार की। नाभादास जी ने इसी कारण हित जी के सम्बन्ध में कहा—'**राधा-चरण-प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी**'।

किन्तु राधा की प्रधानता का यह अभिप्राय नहीं कि राधावल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण का कोई महत्त्व नहीं या कि कृष्ण गौण है। वस्तुतः राधावल्लभ सम्प्रदाय में युगल का महत्त्व है। हितजी ने युगल में समान रस की स्थिति मानी है। युगल के बिना अर्थात् अकेली—श्री राधा या अकेले श्रीकृष्ण से रस संभव नहीं। रसोपासना दोनों से ही संभव है। इन दोनों में एक क्षण भी वियोग और अन्तर नहीं होता। एक-दूसरे के बिना वे रहते ही नहीं। उनका 'नित्यविहार-रूप' ही रस-रूप है। मानिनी राधा को हितहरिवंश सखीरूप में यही सलाह देते हैं कि हे राधा! श्यामतमाल के साथ कनकलता के समान उलझ कर उसे रिझा, क्योंकि गिरिधर गोपाल सदा तेरा ही ध्यान रखते हैं :

तेरोई ध्यान राधिका प्यारी गोवर्धनधर लालहिं।
कनकलता सी क्यों न विराजत अरुझी स्याम तमालहिं॥

यहाँ राधा की प्रधानता इसलिए है क्योंकि स्वयं कृष्ण भी उसके रूप-माधुर्य के भ्रमर बने हुए हैं।

श्री वंशी अली के ललित सम्प्रदाय में राधा की एकमात्र मान्यता हुई। वंशी अली ने कृष्ण के स्थान पर राधा की प्रतिष्ठा की। वंशी अली जी ने उन्नीसवीं शताब्दी

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

के आरम्भ में ललित सम्प्रदाय नामक अपना स्वतन्त्र सम्प्रदाय चलाया। उन्होंने राधा को ही परब्रह्म सर्वेश्वरी माना है। राधा ही सेव्य है, नन्दकुमार कृष्ण तो उसके सेवक-मात्र हैं :

सेव्य सदा श्री राधिका सेवक नंदकुमार।
दूजे सेवक सहचरी, सेवा विपुल विहार॥

श्रीकृष्ण राधा के अनन्य भक्त हैं। उनसे विहार करने के लिए ही श्री राधा ने अवतार लिया है। श्री राधा के रूप हैं—श्री राधा, लाल गिरधर, ललिता सखी और वृन्दावन। राधाजी की प्राप्ति ललित सम्प्रदाय में ललिता सखी की कृपा से ही हो सकती है। ललिता सखी ही सम्प्रदाय की गुरु मानी गई है। वही उपासक या भक्त की पुतलियों में बैठकर ललित रूप का दर्शन कराती है। ये राधा श्री कृष्ण के साथ नित्य विहाररत हैं। इस सम्प्रदाय में भी वियोग के लिए स्थान नहीं। स्वयं श्री कृष्ण भी सखियों—विशेषतः ललिता सखी की ही कृपा से श्रीराधाचरणारविन्द को प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार राधा की महत्ता—एकमात्र प्रतिष्ठा, सखी भाव, नित्य-विहार-सुख आदि विशेषताएँ ललित सम्प्रदाय में राधाबल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय के प्रभाव का ही परिणाम है। श्री वंशी अली ने राधा की सत्ता और शक्ति कृष्ण-निरपेक्ष मानी है जबकि राधाबल्लभ सम्प्रदाय में वह कृष्ण-सापेक्ष है। श्री वंशी अली ने अपनी रचना 'राधिका महारास' में कृष्ण के स्थान पर राधा की रासलीला का वर्णन किया है। यहाँ कृष्ण गायब हैं। राधा ही वेणुवादन करती है और सखियों के साथ रास रचाती है। हितहरिवंश ने जिन पदों में राधा का रूप और महत्त्व व्यक्त किया है, वहाँ भी कृष्ण किसी-न-किसी तरह साथ विद्यमान रहे हैं।

दर्शन या आधार-ग्रन्थ—जहाँ अन्य वैष्णव सम्प्रदाय प्रस्थान-त्रयी पर आधृत हैं और बल्लभ सम्प्रदाय एवं चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीमद्‌भागवत को भी प्रमाण माना गया है, वहाँ राधाबल्लभ सम्प्रदाय किसी पूर्व दार्शनिक मतवाद या ग्रन्थ-विशेष को प्रमाण मानकर नहीं चलता। हितहरिवंश ने न तो ब्रह्मसूत्रों पर कोई भाष्य लिखा, न किसी दार्शनिक मतवाद की प्रतिष्ठा की। उनका मार्ग विशुद्ध प्रेम-मार्ग है और सर्वथा रस-अनुभूति पर आधृत है। इसी से सर्वविरोध-शून्य एवं एकमात्र अनुभव पर आधारित हितहरिवंश जी की वाणी को ही इस सम्प्रदाय के अनुयायी भक्तों ने वेद-वाणी के समान प्रमाण माना। हरिवंश जी की वाणी को निगमों का सार-सिद्धान्त माना गया : '**निगमसार-सिद्धान्त संत विश्राम मधुरवर।**' फिर भी हरिवंशी और हरिदासी सम्प्रदायों में दार्शनिक आधार-ग्रन्थ का प्रामाण्य न होते हुए भी श्रीमद्-भागवतपुराण की मान्यता है। सामान्य भक्ति-सिद्धांत के लिए श्रीमद्‌भागवत को राधाबल्लभ सम्प्रदाय में प्रमाण माना गया किन्तु सम्प्रदाय की विशिष्ट रस-रीति के लिए श्री हितप्रभु की वाणी को ही प्रमाण समझा गया। हित हरिवंश जी के बाद जब इस सम्प्रदाय को विरोध का सामना करना पड़ा, तब इसके कुछ अनुयायियों ने इस सम्प्रदाय को दार्शनिक आधार प्रदान करने का विफल प्रयत्न किया। इस सम्प्रदाय का सिद्धांत बताया गया : राधा और कृष्ण का अद्वैत स्वतः सिद्ध है जिसे सिद्ध करने के

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

लिए माया आदि की आवश्यकता नहीं, इसी से रस-रीति का यह मार्ग सिद्धाद्वैत कहा गया। वास्तव में राधाबल्लभीय मार्ग रसोपासना का मार्ग है, जिसमें किसी प्रकार की दार्शनिक जटिलता या शास्त्रीय विधिनिषेध के लिए कोई गुंजाइश नहीं। हित जी ने बाह्य कर्मकाण्ड, विधिनिषेध आदि किसी को नहीं अपनाया। उन्होंने जीव, जगत्, माया, ब्रह्म, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में भी कोई दार्शनिक ऊहापोह नहीं की। उनकी रस-भक्ति में केवल श्री राधा, श्रीकृष्ण, वृन्दावन, सहचरी आदि विधायक तत्त्वों का ही स्थान है। उनका रस-भक्ति-मार्ग विशुद्ध प्रेम या हित-तत्त्व पर आधृत है। युगल के नित्य-विहार से निष्पन्न होने वाले प्रेमरस की अनुभूति ही इस सम्प्रदाय का परम ध्येय है। नाभादास जी ने श्री हरिवंश का परिचय देते हुए अपने 'भक्तमाल' में उन्हें उत्कट व्रतधारी अनन्य भक्त और विधि-निषेध से परे बताया है—'**विधिनिषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी।**'

प्रेमाभक्ति का प्रेमतत्त्व ही इस सम्प्रदाय का साधन और साध्य है। युगल (राधा-कृष्ण) का नित्य-विहार ही परम प्रेम है और जीवात्मा (सहचरी) द्वारा इस नित्य-विहार का दर्शन ही रस-सिद्धि या प्रेम-सिद्धि अथवा रसोपासना है। साधनापरक भक्ति का इस सम्प्रदाय में कोई विधान नहीं। यद्यपि पुष्टिमार्ग आदि अन्य कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में भी प्रेमाभक्ति की ही मान्यता है, और साधनापरक भक्ति-तत्त्व अत्यन्त गौण माने गए हैं, फिर भी उनमें नवधाभक्ति के अंग तथा अन्य साधनों की भी कुछ-न-कुछ महत्ता बनी हुई थी। राधाबल्लभ सम्प्रदाय में व्यावहारिक रूप में भी पूर्णतः प्रेम-तत्त्व को ही एकमात्र साधन और सिद्धि माना गया। श्यामाश्याम का नित्यप्रेम ही रसरूप में प्रस्फुटित होता है और उसी की प्राप्ति सहचरी साधक का साध्य है। हरिवंश जी ने सांसारिक विषयासक्ति के त्याग के साथ ही वेदशास्त्र-अध्ययन को भी व्यर्थ का श्रम कहा है और राधाप्रेम की तुलना में कैवल्य (मोक्ष) को भी तुच्छ माना है। (रा० सु० नि० श्लोक ८३)। ध्रुवदासजी ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जिसके हृदय में राधाकृष्ण-प्रेम-रस की माधुरी छा जाती है, उसे नवधा भक्ति के अंग जरा भी नहीं भाते और सब नियम-व्रत समाप्त हो जाते हैं :

महा माधुरी प्रेम रस आवै जिहि उर माँहि।
नवधाहू तिहिं रुचै नहिं, नैम सबै मिटि जाहिं॥

युगल प्रेम में तत्सुखी भाव—युगल (राधा और कृष्ण) में प्रेम की समरसता है, दोनों समान रूप से प्रेम-पात्र और प्रेमी हैं। इस युगल प्रेम की एक विशिष्टता यह है कि यह स्वसुख-तत्पर न होकर तत्सुखी है। राधाबल्लभ सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण एक-दूसरे की तुष्टि-हेतु ही क्रीड़ारत हैं। राधा की समस्त चेष्टाएँ माधव को रिझाने के लिए होती हैं और माधव भी वे सब कार्य ही करते हैं जो राधा को आनन्द देते हैं। हितहरिवंश जी के युगल का भाव देखिये; राधा कहती है—

जोई-जोई प्यारौ करै सोई मोहि भावै,
भावै मोहि जोई-जोई, सोई-सोई करै प्यारे।

(हितचौरासी, १)

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

नारद भक्ति-सूत्र के आधार पर ही राधावल्लभ, हरिदासी आदि सम्प्रदायों में 'तत्सुखसुखित्व' भाव की मान्यता हुई। इन सम्प्रदायों में सखी-भाव के मूल में भी यही तत्सुखी भाव है। सखी ललिता आदि (जीवात्मा या भक्त) लाल-लाडली के प्रेम-सुख से ही सुख-आनन्द का अनुभव करती है। लाल-लाडली की सेवा और सुख-साधन जुटाने में ही सखी अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है। इस प्रकार एक ओर प्रिय-प्रियतमा में तत्सुखी भाव की स्वीकृति है, दूसरी ओर प्रेम की प्रेरक सखी भी इस भावना से ओत-प्रोत रहती है। अतः यह प्रेम सर्वथा निर्हेतुक बन जाता है।

सखी-भाव—जैसाकि ऊपर कहा गया है, इस सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति सखी-भाव की है। सखी-भाव से अभिप्राय है जीवात्मा या साधक की राधावल्लभ की सखीरूप में स्थिति अर्थात जिस प्रकार ललिता आदि अंतरंग सखियाँ राधा-कृष्ण की निकुंज-लीला का अति निकट से अवलोकन कर आनन्दलाभ करती थीं, उसी प्रकार जीव भी सखीरूप में नित्य-विहार-लीला का दर्शन-लाभ अपना चरम लक्ष्य बनाये। इसे ही सखी-भाव कहते हैं। पुराणों के आधार पर ही सम्प्रदाय में ललिता आदि आठ सखियों की प्रधानता है, जिन्हें राधाकृष्ण की प्रेमलीला के अन्तरंग-दर्शन और सेवा का सौभाग्य प्राप्त था। ऊपर वर्णित तत्सुखमयी सेवा में रत रहना ही सखियों (जीवात्मा) का साधन और साध्य है। सखी श्यामाश्याम के मध्य संधितत्त्व है, ठीक वैसे ही जैसे रात और दिन के बीच संधि संध्या है, जैसे सर्दी-गर्मी की सन्धि शरद और बसंत हैं। जैसे मिश्री और पानी मिलकर शरबत कहलाते हैं, सन्धि-रूपा सखियों को भी वैसा ही समझना चाहिए :

सांझ संधि ज्यौं निसदिन माहीं। शरद-बसंत रितुन में श्राहीं।।
मिश्री पानी शरबत ज्यौंके। संधि सहेली समुझीं त्यौंके ।।

—मोहन जी (केलि-कल्लोल)

सखी युगल-प्रेम की प्रेरक है और साथ ही युगल की रति पर आसक्त है। सखी का सुख सर्वतः युगल के सुख से जुड़ा हुआ है। हरिवंशजी ने सखियों को 'हित-चिंतक' कहा है। श्यामाश्याम को सुख देना ही सखियों का एकमात्र लक्ष्य है। अष्ट-याम युगल-सेवा-द्वारा ही इस लक्ष्य की पूर्ति संभव है। सखियों के इस चाव-भरे सेवा-भाव का वर्णन ध्रुवदास जी ने यों किया है—

सखी चहुं ओर फिरैं चकडोर-सी सेवा कौ भाव गढ़यौ मन मांहीं।
साज सिंगार नई-नई आनत बानत नैकहुं हारत नाहीं ।।

यद्यपि सखियाँ मुख्यरूप से सखी-भाव से सेवा करती हैं, पर समय-समय पर वे पुत्रवत् भाव से, पतिवत् भाव से, दासी-भाव से तथा आत्मवत् भाव से भी सेवारत रहती हैं। प्रातः जागरण वात्सल्य से ओत-प्रोत होता है तो साज-सँवार, रास के लिए आह्वान, सहानुभूति, मान-त्याग की सलाह, मिलन-प्रेरणा आदि प्रयत्न सखीभाव के द्योतक हैं। युगल ही सखियों के प्राण-धन हैं। युगल के सुहाग-सौभाग्य से ही सखियाँ अपने को सुहागवती समझती हैं; उनकी यही भावना पतिवत् भाव है। युगल के सुख को वे अपना सुख मानती हैं, यह तत्सुख-स्वसुख-अभेदत्व ही सखियों का आत्मवत्भाव है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हरिवंश जी ने अपनी हित-चौरासी में सखी के इस भाव का सुन्दर वर्णन किया है :

पग डगमगात चलत बन बिहरत रुचिर कुंज घन खौर ।
हित हरिवंश लाल-ललना मिलि हियौ सिरावत मोर ॥

अर्थात् ''लाल-लाड़ली आनन्द-मग्न हुए डगमग पदों से कुंजविहार कर रहे हैं। दोनों का यह मनोहर मिलन मेरे (हितप्रभु अथवा सखी या साधक) मन को शीतलता प्रदान कर रहा है ।

राधाबल्लभ सम्प्रदाय में सखियों का पतिवत् भाव ही मान्य है, पतिभाव नहीं। बल्लभ सम्प्रदाय तथा चैतन्यमत में गोपियों और सखियों का गोपी-भाव कृष्ण के प्रति पतिभाव है : गोपियाँ कृष्ण-कान्ता हैं । पर राधाबल्लभ सम्प्रदाय में सखियाँ कृष्ण-कान्ता नहीं हैं । कान्त-कान्ता तो वहाँ एकमात्र युगल ही हैं। सखियों की कृष्ण के प्रति रति नहीं है । वे कृष्ण के आलिंगन, मिलन आदि की आकाँक्षा नहीं रखतीं ।

गोपी-प्रेम को बल्लभ, चैतन्य आदि सम्प्रदायों में आदर्श माना गया है । निस्सन्देह गोपियां प्रेम की ध्वजा थीं, पर राधाबल्लभ सम्प्रदाय में गोपी-प्रेम पर सखी-प्रेम या सखीभाव की वरीयता है, क्योंकि गोपियों में फिर भी कुछ सकामता थी, पर सखियों का प्रेम पूर्णतः निष्काम है।

यद्यपि जीव का दार्शनिक विवेचन हित हरिवंश ने कहीं नहीं किया, फिर भी सम्प्रदाय की धारणा है कि सखी-रूप जीव का पारमार्थिक रूप है । अपने सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठकर जीव जब राधा की कृपा प्राप्त कर लेता है तभी वह सखी या सहचरी रूप बन जाता है और राधा-माधव की निकुंज-लीला और नित्य-विहार के दर्शन का अधिकारी बन आनन्द प्राप्त करता है ।

वृन्दावन—युगल की लीला-स्थली वृन्दावन के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और महात्म्य का वर्णन राधाबल्लभ सम्प्रदाय में वैसा ही है जैसा भागवत आदि पुराणों एवं बल्लभ आदि अन्य सम्प्रदायों में प्रकट हुआ है । वृन्दावन की भी कोई दार्शनिक व्याख्या श्री हितहरिवंश या उनके अनुयायियों ने नहीं की। श्यामाश्याम के नित्य-विहार के सहायक तत्त्वरूप में वृन्दावन को भी नित्य माना है। जिस प्रकार सखी-सहचरी युगल-प्रेम की प्रेरक मानी जाती है; उसी प्रकार वृन्दावन धाम भी युगल-प्रेम का प्रेरक और उद्दीपक है ।

भक्ति-पद्धति

राधा-कृष्ण को एकमात्र भक्ति का आलम्बन मानकर अनन्यता का भाव लाना इस सम्प्रदाय में भक्त का प्रथम परम कर्त्तव्य है । अनन्यता की प्राप्ति के कोई बाह्य साधन नहीं हैं । राधा या युगल की कृपा से ही यह संभव है और कृपा-प्राप्ति का उपाय यही है कि रात-दिन रसिक-जनों का संग किया जाय । ध्रुवदास जी का कथन है :

या रस कौ साधन नहिं कोई । एक कृपा तें जो कछु होई ॥
वही कृपा उपजै किहि भांती । रसिकनि संग फिरं दिन राती ॥

रसोपासक रसिकों की हरदम संगति में रह कर श्री हरिवंश-धर्म को धारण करने वाला ही निपट (सच्चा) रसिक कहलाता है । ऐसी सत्संगति और हरिवंशवाणी

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

के परायण से विषय-वासना, गृह-व्यवहार, सांसारिक लोभ-मोह सब नष्ट करके एक-मात्र युगल-विहार में आसक्ति ही सच्चे रसोपासक का लक्षण है। नागरीदास जी ने हरिवंशी रस-मार्ग को अपनाने की विधि बताते हुए कहा है कि विषय-वासना को जला कर उसकी राख को भी जब मन से झाड़-फटकार दिया जाता है तभी यह देह रसिक-नरेश (हरिवंश जी) के रस-मार्ग पर अग्रसर हो सकती है।

विषय-वासना जारिकै झाड़ि उडवै खेह। मारग रसिक नरेस के तब ढंग लागै देह ॥

यद्यपि नवधाभक्ति का वैसा विधान इस सम्प्रदाय में नहीं जैसा मर्यादा-मार्गीय भक्ति में होता है या जैसे वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण की ब्रज-लीलाओं के अन्तर्गत नवधा-भक्ति के सब अंग समाहित कर लिये गये हैं तथापि राधाबल्लभ सम्प्रदाय में नवधा भक्ति के सभी तत्त्व प्रेम-भक्ति या रसोपासना के अंग बना लिये गये हैं। हिताचार्य की वाणी या युगल प्रेम-गान सुनना ही श्रवण है। विविध रागों में वाणी का गान कीर्तन है। युगल-चरणों की शरण ग्रहण करना ही पादसेवन या वंदना है। ध्रुवदास जी के अनुसार भजन की रीति यह है कि सबकी आशा छोड़कर विश्वासपूर्वक युगल-चरणों की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

रीति भजन की यहै ध्रुव छांडै सब की आस।
युगल चरन की सरन गहि मन में धरि बिस्वास ॥

स्वामी हितहरिवंश ने राधास्वामिनी की अनन्याश्रयता में ही चरित-श्रवण, नामस्मरण, गुण-गान, निकुंज-साहचर्य, रूपासक्ति आदि नवधा-भक्ति तथा आसक्ति के तत्त्वों को सम्मिलित करते हुए कहा है : "हे श्रीराधे, तुम्हारा उच्छिष्ट ही मेरे लिये अमृत-भोग है। मैं तुम्हारे ही चरित का श्रवण करता हूँ, तुम्हारी ही चरण-कमल-रज का ध्यान लगाता हूँ, तुम्हारे ही कुंजों में विचरण करता हूँ, तुम्हारे ही दिव्य गुणों का गान करता हूँ और तुम्हारे ही रूप का दर्शन करता हूँ। हे रस-दायिनी ! मैं अपने शरीर, मन और वाणी की सभी क्रियाओं के साथ तुम्हारे आश्रित हूँ।"

(राधासुधानिधि श्लोक २४०)

इस अनन्याश्रयता का रूप यही है कि वाणी से युगल-नाम-गुण के सिवा अन्य कुछ नहीं निकलता, नेत्र अन्य कुछ नहीं देखते, श्रवण अन्य कुछ नहीं सुनते, हाथ अन्य किसी देवता का स्पर्श नहीं करते और चरण वृन्दावन-निकुंज के सिवा अन्यत्र कहीं विचरण नहीं करते। यह अनन्यसिद्धि आसान नहीं, मन-प्राण की समस्त दशायें युगल-भजन में लगानी पड़ती हैं।

अनन्य कहाइबो अतिहि बांको।
सबै दसा जब भजनहि मिलि हैं नैकु न इतको घांको ॥ —नागरीदास

जो इस प्रकार राधा-कृष्ण का अनन्य सेवक-भक्त बन जाता है उसे जप, तप, नियम, व्रत, योग-यज्ञ, तीर्थ-स्नान, दान, संध्या-वंदन-तर्पण, पितरों के श्राद्ध, नवग्रह-पूजा आदि कोई साधन या कर्म अपनाने की आवश्यकता नहीं। ध्रुवदास जी का कथन है कि श्राद्ध-कर्म में जो निपुण हैं, वे पितृ-लोक को प्राप्त करते हैं, पर भक्त तो मुक्ति की भी कामना नहीं करता, और लोक तो किस गिनती में हैं ?—

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कर्म श्राद्ध में कुशल जे पितृ लोक ते जाहिं ।
भक्त गनत नहिं मुक्ति की और लोक किहिं माहिं ।।

कहते हैं इस अनन्याश्रयता की पूर्ण सिद्धि के लिए ही हितहरिवंश ने वैष्णवों में प्रचलित एकादशी व्रत का भी त्याग कर दिया था क्योंकि उनके अनुसार करोड़ों एकादशी व्रत रसेश्वरी के महाप्रसाद के एक अंश मात्र हैं ।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इस सम्प्रदाय में सखी-रूप में माधुर्य-भाव की रसोपासना मान्य है । श्री ध्रुवदास जी ने वैराग्य-ज्ञानजन्य शांत रस से बढ़कर दास्य-भक्ति-भाव को, दास्य से श्रेष्ठ सखा-भाव, सखा से अधिक वात्सल्य और वात्सल्य से ऊँचा गोपी-भाव का कृष्ण-प्रेम-जन्य माधुर्य-भाव तथा ललितादि सखियों-द्वारा सेवित सखी-भाव के युगल-प्रेम-जन्य मधुर रस को सर्वोपरि माना है ।

ज्ञान शांत रस तें अधिक अद्भुत पदवी दास ।
सखा भाव तिनतें अधिक जिनकें प्रीति प्रकास ।।
अद्भुत बाल चरित कौ जो जसुदा सुख लेत ।
तातें अधिक किसोर-रस ब्रज वनितनि के हेत ।।
सर्वोपरि है मधुर रस जुगल किसोर विलास ।
ललितादिक सेवत तिनहिं मिटत न कबहूं हुलास ।।

राधा की सखी अथवा दासी के भाव को सर्वोपरि इसलिए माना गया है, क्योंकि सखी या दासी को ही युगल की अन्तरंग टहल का अधिकार प्राप्त हो सकता है । "दास का अन्तःपुर में प्रवेश नहीं हो सकता, सखागण भी कृष्ण के अन्तरंग रहस्य में प्रवेश नहीं पा सकते । वत्सल भाव में स्वामी-सेवक का व्यवहार नहीं हो पाता । अतः श्री राधा की दासी अथवा सखी-भाव को ही रास-लीला में प्रवेश मिलता है ।" (सेवा-विचार)

इस सखी-भाव के अन्तर्गत दास्य की स्थिति प्रेम की सम्पूर्ण अधीनता का भव्य उदाहरण है । उपासक चाहे पुरुष हो या स्त्री उसे सखी-रूप अपना कर अपने को राधा-किंकरी समझना चाहिए । अपनी रचना 'राधा सुधानिधि' में हितहरिवंश ने राधा-दास्य-प्राप्ति की प्रार्थना की है ।

इस प्रकार राधावल्लभ संप्रदाय में अनन्य रसोपासना का मार्ग तीन अंगों में विभाजित है—(१) एक, मुख-द्वारा नाम-कीर्त्तन और वाणी-रस-गान, (२) दूसरे, कानों द्वारा वाणी-श्रवण और (३) तीसरे, हाथ-पाँव, मन-वाणी आदि-द्वारा युगल की परिचर्या ।

परिचर्या में केवल दासी-भाव का ही अधिकार है । इस परिचर्या या सेवा के भी तीन भेद माने गए हैं—प्रकट सेवा, भावना एवं नित्यविहार ।

राधा-कृष्ण के प्रकट मूर्त्त युगल-स्वरूप की परिचर्या प्रकट सेवा कहलाती है । यह लगभग बल्लभसंप्रदाय की नित्य और नैमित्तिक सेवा-जैसी ही है । इसमें मंदिर में विराजमान युगल-मूर्ति की सेवा-अर्चना का विधान है । राधाबल्लभलाल का त्रिभंग-ललित, वेणुवादन-तत्पर मूर्त्ति-रूप मंदिर में प्रतिष्ठित होता है । उनके वाम अंग में

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भव्य वस्त्राभूषण से सज्जित श्री राधा की मूर्ति एक आसन पर विराजमान होती है। नित्य सेवा का आरम्भ प्रातः जागरण से होता है। यह अष्टयाम सेवा है। प्रातः स्नानादिक से निवृत्त होकर सखी या दासी-रूप उपासक गुरु-मंत्र का जाप करता है। मंदिर को साफ करना, गंगाजल से शुद्ध करना तथा सेवा-पात्रों को मांज-धोकर साफ करना भी उसकी अष्टयाम सेवा के आरम्भिक कार्य हैं। फिर युगल का नाम-स्मरण और गुण-गान करता हुआ रसोपासक भक्त युगल को शय्या से जगाता और उठाता है। हाथ-मुँह धुलाता है। भोग-सामग्री, शीतल जल दे कलेऊ कराता है, तांबूल अर्पित करता है और फिर युगल की 'मंगला आरती' करता है। तदनन्तर उनके शरीर पर तेल-उबटन मलता है और गुनगुने सुगंधित जल से उन्हें स्नान कराता है। रंग-बिरंगे वस्त्राभूषणों से उनका श्रृंगार करता है, चंदन का तिलक आदि लगाता और गले में वेजयंती माला पहनाता है। तुलसी अर्पण कर चरण-वंदना करता है। भोग कराकर फिर 'श्रृंगार-आरती' करता है और घंटों सरस पद गाकर लीलागान करता है। मस्ती में झूमता और नृत्य-गान करता है। फिर 'मध्याह्न आरती' होती है। तदनन्तर सुगंधित पुष्पों की सेज रचकर उस पर युगल का शयन कराता और स्वयं चरणों का संवाहन करता हुआ उनकी सेवा करता है। फिर इसी प्रकार अत्यन्त तत्परता के साथ सायं-सेवा करता है। भोग करा तांबूल अर्पण कर प्रभु-युगल का गुणगान और कीर्तन करता है। फिर 'संध्या-आरती' करता है। शयन-भोग के बाद 'शयन आरती' होती है। फिर पुष्पित सेज पर शयन कराता और स्वयं चरण-संवाहन, बयारि करना आदि सेवाएँ अर्पित करता है।

नैमित्तिक या उत्सव-सेवा पर्वों आदि के अवसर पर होती है, जैसे होली-फाग-उत्सव, शरदोत्सव, पाटोत्सव, दीपमालिका, बसंतोत्सव आदि इस सेवा-विधान में भक्त का शुद्ध तत्सुखसुखित्व भाव होना आवश्यक है। इस सम्प्रदाय की प्रकट सेवा बल्लभ-सम्प्रदाय (पुष्टि मार्ग) की तनुजा तथा वित्तजा सेवाओं से मिलती-जुलती हैं।

परिचर्या का दूसरा रूप 'भावना' है। इस संप्रदाय की 'भावना' सेवा पुष्टि-मार्ग की मानसी सेवा से मिलती है। प्रकट सेवा में युगल की मूर्त्ति आलंबन बनी रहती है, 'भावना' में युगल की मूर्त्ति, वृन्दावन, गुरु आदि का मन में ध्यान तथा स्मरण किया जाता है। 'भावना' में युगल की सभी प्रेम-लीलाओं का चिंतन एवं गान सम्मिलित है। प्रकट सेवा स्थूल देशकाल से आबद्ध है जबकि 'भावना' देशकाल, सेव्य, सेवा-सामग्री आदि की स्थूलता से स्वतंत्र है। इसमें भक्त अपने मन में ही स्थूल रूपों का ध्यान या चिंतन करता है। इनमें मन की एकाग्रता बहुत आवश्यक है। पहले भक्त को सखीभाव अपने मन में लाना होता है। एकाग्रता का अभ्यास करने के लिए ब्रह्म-मुहूर्त्त में शुद्ध मन से गुरु के सखीरूप तथा हित-प्रभु हरिवंश के सखीरूप का ध्यान करना होता है। फिर श्री वृन्दावन धाम का ध्यान लगाना आवश्यक है, तदनन्तर युगल के स्वरूप और उनकी लीलाओं का अनुचिंतन करना होता है। अष्टयाम और नैमित्तिक सेवा पर इस संप्रदाय के कवियों ने अष्टयामों की रचना की है। इन अष्टयामों के पदों का मनोयोगपूर्वक गान करना ही भावना सेवा है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

परिचर्या का तीसरा रूप है नित्य-बिहार । नित्य-बिहार-सेवा की उपलब्धि ही इस सम्प्रदाय का लक्ष्य है । प्रकट सेवा और भावना भी इसी सेवा के हेतु होती है । प्रकट सेवा स्थूल सेवा होती है, उसमें मानसी भावना अपेक्षाकृत कम होती है । उसमें युगल-किशोर का प्रत्यक्षीकरण स्थूल मूर्त्त रूप में इंद्रियगोचर होता है । भावना सेवा में मानस-प्रत्यक्षीकरण होता है । नित्य-विहार सेवा में न केवल भक्त अपने उपास्य का मानस-प्रत्यक्षीकरण करता है, अपितु वह सघन कुंजरंध्रों से युगल के नित्य बिहार का प्रत्यक्ष दर्शन भी करता है । वह युगल के नित्य-विहार में सम्मिलित होने का अधिकारी बन जाता है । सेवा के इन तीन रूपों में प्रेम का उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता है । श्री लाडलीदास का कथन है कि प्रकट सेवा में प्रेमभाव कूप-जल के समान सीमित रहता है, भावना में वह नदी-का-सा विस्तार पा जाता है और नित्य बिहार-रस तो समुद्र-सा गहन गंभीर है :

प्रकट भाव जल-कूप लौं नदी भावना जान ।
तापर नित्यविहार रस ज्यौं समुद्र रति मान ।।

जब भक्त अपने मन, प्राण, वाणी और समस्त इंद्रियों तथा अपने संपूर्ण निज-रूप को युगल-रूप से नित्यतः संबद्ध कर देता है और ललितादि सखियों की भाँति युगल के नित्य-विहार का दर्शन करता हुआ नित्य-विहार-सेवा में रत रहता है । तभी अपना परम लक्ष्य प्राप्त करता है । तब वह नेत्रों से युगल की रूपमाधुरी का दर्शन करता है, कानों से युगल का मधुरालाप सुनता है और हाथ-पैरों से उसकी नित्य-विहार-सेवा का आनन्द लेता है । वह सच्चे सहचरी-पद को पा आनन्द-विभोर रहता है । वह प्रिया-प्रियतम को निरख उन पर न्यौछावर हो जाता है :

यह रस जो मन बच कै गावै । निश्चै सो सहचरि पद पावै ।।
इन्हीं नैननि सब सुख देखै । जनम सुफल अपनौ करि लेखै ।।
नव मोहन श्री राधा प्यारी । हित ध्रुव निरखि जाई बलिहारी ।। —ध्रुवदास

संक्षेप में यही हरिवंशी मार्ग है, यही इस सम्प्रदाय की साधना और सिद्धि है । श्री हित हरिवंश के जीवन और काव्यत्व पर और विस्तृत प्रकाश हमने अन्यत्र डाला है ।

सम्प्रदाय-मुक्त कृष्ण-भक्त कवि

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, हिंदी में जहाँ एक ओर बल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, चैतन्य-अनुयायी आदि विभिन्न सम्प्रदायों और मतों के भीतर दीक्षित अनेक कृष्णभक्त कवियों ने अपनी-अपनी पद्धति पर कृष्ण-भक्ति का राग अलापा, वहाँ दूसरी ओर अनेक ऐसे कृष्णभक्त-कवि भी हिंदी में हुए हैं, जिन्होंने किसी संप्रदाय-विशेष में दीक्षा ग्रहण किये बिना अथवा किसी दार्शनिक मतवाद से विशेष प्रभावित हुए बिना ही अपनी श्रद्धा-प्रेम पुष्पांजलि प्रभु कृष्ण के चरणों में समर्पित की । ऐसे संप्रदाय-मुक्त कवियों के भी दो भेद स्पष्ट हैं—

(१) भक्त-कवि, जैसे मीरां, तुलसीदास आदि । इनमें भी दो प्रकार के भक्त-कवि हुए हैं, एक तो ऐसे जो मुख्यतः कृष्णभक्त थे, जैसे मीरां, दूसरे ऐसे जो गौण रूप

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

में ही कृष्ण-भक्त कहे जा सकते हैं, जैसे तुलसीदास जो मुख्य रूप से तो रामभक्त प्रसिद्ध हैं, पर जिन्होंने कृष्ण के प्रति भी अपनी भक्ति-भावना कृष्णगीतावली-जैसी रचनाओं में व्यक्त की।

(२) दूसरे प्रकार के संप्रदाय-मुक्त कवि वे हैं, जो भक्त तो न थे, पर जिन्होंने कृष्ण-भक्ति-काव्य की रचना करके कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति अर्पित की है। ऐसे संप्रदाय-मुक्त कवियों की परम्परा संप्रदायी कवियों से भी प्राचीन है। विष्णुदास, विद्यापति से लेकर रहीम, रसखान, विहारी, पद्‌माकर आदि अनेक मध्ययुगीन कवि इसी कोटि में आते हैं। इनमें भी दो प्रकार की कृष्ण-भावनाएँ प्रकट हुई हैं। कुछ कवियों ने कृष्ण के लौकिक प्रेम का प्रकाशन ही मुख्य रूप से किया, अलौकिक भक्ति-भाव गौण-रूप से अपनाया। विद्यापति से लेकर बिहारी आदि सभी रीतिकालीन कृष्ण-कवियों का कृष्ण के प्रति भाव-बोध इसी प्रकार दोहरा रहा। मुख्यतः वे लौकिक शृंगार और प्रेम के कवि थे, पर गौण रूप से -- प्रायः अपने जीवन की संध्यावेला में— उन्होंने भक्ति-भाव का भी प्रकाशन किया है। विष्णुदास-जैसे दूसरे कवि भी हुए हैं जिन्होंने कृष्ण के अलौकिक रूप को ही अपनी कविता का विषय बनाया।

सम्प्रदायी कृष्ण-भक्त-कवियों और उनके भक्ति-भाव का अध्ययन हम पीछे कर चुके हैं यहाँ सम्प्रदायमुक्त भक्त-कवियों पर विचार किया जाता है। सम्प्रदाय-मुक्त कृष्ण-भक्त कवियों में किसी प्रकार का साम्प्रदायिक आग्रह या दुराग्रह नहीं है। यहाँ तक कि इन कवियों में रामकृष्ण के अभेदत्व की प्रवृत्ति भी सम्प्रदायी कृष्ण-भक्त कवियों से अधिक दिखाई देती है। प्रधानतः कृष्ण-भक्त कवयित्री मीराबाई में भी यह हुए प्रवृत्ति स्पष्ट है। मीरा के अनेक पदों में राम और कृष्ण एक साथ आराध्य देव बने हैं। दूसरी प्रमुख बात यह कि सम्प्रदायमुक्त कृष्ण-भक्त कवियों ने भक्ति-भाव का सहज, स्वाभाविक प्रकाशन किया है, किसी विशेष भक्ति-पद्धति या सेवा-विधि को न अपनाकर इन्होंने उन्मुक्त भाव से कृष्ण-भक्ति प्रकट की है। न तो ये दार्शनिक मत-वाद में उलझे हैं, न किसी विशिष्ट सेवा-विधि का इन्होंने आग्रह किया। न केवल मीराबाई में कोई दार्शनिक तर्क-वितर्क नहीं पाया जाता, अपितु तुलसीदास-जैसे तत्त्व-ज्ञानी कवि भी जब कृष्ण-भक्ति के पद गाते हैं, तो अपने तत्त्व, दर्शन या सिद्धांतवाद को परे रख देते हैं। मीरा को सम्प्रदायमुक्त कृष्ण-भक्त कवियों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है।

कृष्णाख्यानक प्रबंधकाव्य-परम्परा

परम्परा -- हिन्दी कृष्ण-काव्य की प्रबन्ध-परम्परा भी पर्याप्त प्राचीन है। प्रायः भ्रमवश यह कह दिया जाता है कि कृष्ण-काव्यधारा में मुक्तक काव्य ही रचा गया, प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं हुई। परन्तु यह धारणा बिल्कुल गलत है। कृष्णाख्यानक प्रबन्ध काव्यों की परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी मुक्तक गीत-काव्य की। १४वीं शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी के मध्य अर्थात् आधुनिक काल के उदय से पुर्व तक हिन्दी में सैकड़ों कृष्णाख्यानक प्रबन्धकाव्य रचे गए। अधिकांश प्रबन्धकाव्य धर्माश्रय अर्थात् कृष्ण-भक्ति के प्रभाव में रचे गए। यों तो १४वीं शती के कवि सधार जैन द्वारा रचित 'प्रद्युम्न चरित' नामक प्रबन्धकाव्य में भी कृष्ण-चरित का कुछ समावेश

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

हुआ है पर उसमें वैष्णव धर्म के स्थान पर जैन धर्म की प्रतिष्ठा का उद्देश्य है। सधार अग्रवाल जैन-धर्मावलम्बी थे। उन्होंने कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न को जैन धर्म में दीक्षित होते प्रदर्शित किया है।

विष्णुदास—सूरदास से पूर्व १५वीं शताब्दी के कवि विष्णुदास को इस परम्परा का प्रवर्त्तक माना जा सकता है। काशी-नागरी सभा की १९०६-८, १९१२ एवं १९२६-२८की खोज-रिपोर्टों में विष्णुदास का परिचय प्रकाशित हुआ था। विष्णुदास ग्वालियर-नरेश राव डूंगेन्द्रसिंह के राज्यकाल(आरम्भ १४२४ ई०) में वर्तमान थे। 'महाभारत-कथा', 'रुक्मिणी मंगल', 'स्वर्गारोहन' तथा 'सनेह लीला' आदि उनकी चार-पाँच रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। उन्होंने 'महाभारत कथा' की रचना भी धार्मिक दृष्टिकोण से की है। पांडवों की कथा के बीच-बीच में कवि की भगवान् कृष्ण के प्रति भक्ति भावना भी व्यंजित हुई है। 'रुक्मिणी मंगल' भी कृष्ण-भक्ति से ओतप्रोत रचना है। काव्यत्व की दृष्टि से भी यह कवि की श्रेष्ठ रचना प्रतीत होती है। यद्यपि इसमें कई स्थानों पर अनावश्यक वर्णन हैं; तथापि बीच-बीच में भावों की सुन्दर व्यंजना की गई है। रुक्मिणी अपने भावातिरेक में पत्र लिखने में भी असमर्थ है।

कहा करूं कैसे लिषूं नैन लिषन नहिं देत।
बरसत जिमि सावन घटा नेक चैन नहिं लेत॥

कवि ने विविध छन्दों के बीच-बीच में गीत भी प्रस्तुत किये हैं, जो भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हैं।

यदि भ्रमरगीत काव्य-प्रसंग से सम्बन्धित 'सनेह लीला' रचना विष्णुदास की मानी जाए तो भ्रमरगीत काव्य की परम्परा सूर से पूर्व विष्णुदास से प्रचलित मानी जायेगी। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी विष्णुदास को कृष्ण-काव्य का प्रेरक कवि मानते हुए कहा है —"वस्तुत: जिस प्रकार दोहा-चौपाई-शैली में 'स्वर्गारोहण' काव्य को प्रस्तुत करके विष्णुदास ने परवर्ती पौराणिक प्रबंध-रचयिताओं (जिनमें गोस्वामी तुलसीदास भी आ जाते हैं) का पथ-प्रदर्शन किया वहाँ उन्होंने कृष्ण-भक्ति-विषयक पद लिखकर कुंभनदास, सूरदास आदि के लिए नई परम्परा का प्रवर्त्तन किया। अत: काव्यत्व की दृष्टि से विष्णुदास भले ही बहुत उच्च कोटि के कवि सिद्ध न हों किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उनका महत्त्व बहुत अधिक है,…वे सूर-तुलसी-जैसे कवियों के अग्रज एवं पथ-प्रदर्शक सिद्ध होते हैं।"[1]

कवि ईश्वरदास (लगभग १५०० ई० में वर्तमान) ने अपनी रचना 'स्वर्गा-रोहिणी कथा' के आरम्भ में पूर्व कवियों और रचनाओं का उल्लेख करते हुए किन्हीं जयदेव-द्वारा रचित 'कृष्ण-चौबीसी' और दंड कुमार नामक कवि द्वारा 'कृष्ण-केलि' रचनाओं का उल्लेख किया है। 'कंस वध' नामक एक और रचना का उल्लेख हुआ है। यद्यपि ये रचनाएँ और इनके रचयिता अभी विस्मृति के गर्भ में ही पड़े हैं : रचनाएँ प्राप्त नहीं हुई हैं, तथापि इस उल्लेख से इतना तो स्पष्ट है कि ईश्वरदास के पुर्व ही

१. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : पृ० २३४।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

ईसा की १४वीं-१५वीं शताब्दियों में सूरदास, नन्ददास आदि से पूर्व हिंदी में कृष्ण-काव्य की प्रबन्ध-परम्परा पर्याप्त वेग से प्रचलित हो चुकी थी। अतः १६-वीं शती के सूरदास-नन्ददास आदि महाकवियों की भाव-भूमि का सबल निर्माण १४वीं १५वीं शताब्दियों में ही हो चुका था। मुक्तक गीत-काव्य की परम्परा में विद्यापति और प्रबन्ध-काव्य की परम्परा में इन प्रबन्धकारों का ऐतिहासिक महत्त्व है। १६वीं शती और उसके बाद समग्र मध्यकाल में तो कृष्णाख्यानक प्रबन्ध काव्य की भरपूर रचना हुई। आधुनिक काल तक यह परम्परा अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित रही।

महाकाव्य का अभाव—इसमें संदेह नहीं कि मध्यकालीन इस कृष्ण-काव्य में 'रामचरितमानस' या 'पद्मावत' जैसे किसी महाकाव्य की रचना नहीं हो सकी, पर कृष्ण-चरित्र और कृष्ण-लीलाओं-सम्बंधी खण्ड काव्यों तथा आख्यानात्मक गीति काव्य की एक समृद्ध परम्परा इस काव्य-धारा में विकसित हुई है। यद्यपि अनेक कवियों ने कृष्ण-चरित्र को सम्पूर्णतः अपनाया: कृष्ण के जन्म से लेकर भारत-युद्ध-प्रवेश आदि की आद्यन्त जीवन-स्थितियों का चित्रण किया, पर यह आश्चर्य की ही बात है कि सूरदास, हितवृन्दावनदास आदि ऐसे कवियों ने महाकाव्य-शैली नहीं अपनाई। महा-काव्य में जीवन की महत् कल्पना और विषय-वस्तु की मार्मिक व्यापकता होती है। यद्यपि कृष्ण-चरित्र में ये दोनों ही बातें थीं, और इनका पर्याप्त अंश में समावेश सूरदास आदि कृष्ण-कवियों के काव्य में हुआ भी है, पर उसकी संगठित और समग्र-सुयोजित अनुभूति इन कवियों ने न स्वयं की और न अपनी रचनाओं में प्रकट की। भक्ति-भावना अथवा प्रेम-व्यंजना के भावातिरेक ने इन्हें कृष्ण-चरित्र अथवा कृष्ण-लीलाओं की खण्ड अनुभूतियों तक ही सीमित रखा। इनका मूल दृष्टिकोण भावुकता-पूर्ण ही रहा। कृष्ण की बाल-लीलाओं तथा अन्य ब्रजलीलाओं में ही इनका हृदय रमा रहा, अतः जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का सांस्कृतिक चित्रण इनका मुख्य उप-जीव्य नहीं बन सका। कंस आदि राक्षसों के अत्याचारों का वर्णन तथा अन्य सामा-जिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों का अवलोकन ये नहीं करा पाये। कंसवध आदि का जो पौराणिक परम्परागत वर्णन सूरदास आदि कुछ कवियों ने किया है, वह भी कृष्ण के अलौकिक लीलागान के लिए ही किया है, सामाजिक-सांस्कृतिक अनुरोध से नहीं। वस्तुतः इन कवियों का आधार और आदर्श-ग्रन्थ 'भागवतपुराण' ही रहा, 'महाभारत'—जैसा महाकाव्य नहीं। महाकाव्यकार की दृष्टि वस्तुपरक होती है और उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक। इन कवियों की दृष्टि और प्रवृत्ति भावुकतापरक अलौ-किकता से बंधी रही और उद्देश्य रहा वैयक्तिक। जिन कवियों की अपने प्रबन्ध काव्यों में विषय-वस्तु की ओर प्रवृत्ति दिखाई देती है, वह खण्ड-रूप में होने के कारण खण्ड-काव्यों का ही निर्माण कर सकी। अतः इन कारणों से कृष्ण काव्य महाकाव्य की गौरव-गरिमा से वंचित ही रहा। जीवनोदात्तता का इस काव्य-धारा में प्रायः अभाव ही रहा, चाहे इन कवियों का उद्देश्य वैयक्तिक कल्याण की कितनी ही ऊँची भूमि तक पहुँचा हुआ हो। मार्मिक कथा-तत्त्वों के संगठन की विशेषता के अभाव में 'सूर-सागर'—जैसे वृहत्कृष्ण-चरितकाव्य में गीति तत्त्वों से रहित वर्णनात्मक स्थल नीरस

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

और निःशवत ही रह गए हैं ।

खण्ड-काव्य—किन्तु कृष्ण काव्य में खण्ड प्रसंगों से संबंधित सैंकड़ों खण्ड-काव्य रचे गए । खण्ड-काव्य में जीवन के किसी एक पहलू, किसी एक घटना या प्रसंग का चित्रण होता है, महाकाव्य-जैसी सर्गबद्ध संधियुक्त विस्तृत कथा नहीं होती । साथ ही इसमें प्रासंगिक कथाओं या घटनाओं का समावेश भी बहुत कम होता है । यद्यपि साहित्य का महत् उद्देश्य सभी प्रकार के काव्य में होना चाहिए, तथापि खण्डकाव्य में सामाजिक-सांस्कृतिक महत् उद्देश्य उतना अनिवार्य नहीं, जितना महाकाव्य में । खण्ड-काव्यों में रस-भावों का चित्रण भी महाकाव्य की अपेक्षा सीमित होता है । एक ही रस समग्रतः चित्रित हो सकता है । खण्डकाव्य की इस खण्ड-अनुभूति के उपयुक्त प्रबंध-तत्त्व कृष्ण-लीलाओं से संबंधित खण्ड-प्रसंगों में पर्याप्त थे । इसी से कृष्ण काव्यधारा में खण्ड-काव्यों की प्रचुर रचना हुई । इन रचनाओं को इन भागों में बाँटा जा सकता है :

(क) **भागत के ढंग पर कृष्ण के सम्पूर्ण चरित से सम्बन्धित कृष्णचरितात्मक काव्य**—नंददास का 'भाषा दशम स्कन्ध', सूरदास का 'सूरसागर', लालचदास-कृत हरिचरित (१५२८ ई०), परमानंददास का 'परमानंदसागर' आदि । यद्यपि 'सूरसागर' आदि इन काव्यों को प्रबन्ध काव्य मानना विवादास्पद है, तथापि इनकी आख्यानात्मक प्रवृत्ति इन्हें मुक्तक काव्य भी सिद्ध नहीं करती । प्रबन्ध-तत्त्वों की शिथिलता होते हुए भी हम इन रचनाओं को चरितकाव्यात्मक मानने के पक्ष में हैं ।

(ख) **रुक्मिणी हरण-सम्बन्धी खण्ड काव्य**—जैसे नन्ददास, विष्णुदास, नरहरि-रचित 'रुक्मिणी मंगल', महाराज पृथ्वीराज-विरचित 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री', आलम कृत 'स्याम सनेही' आदि ।

(ग) **कृष्ण प्रवास-सम्बन्धी भ्रमरगीत**—जैसे सूरदास, नन्ददास का 'भँवरगीत', रस-नायक व बख्शी हंसराज-कृत 'विरह विलास' नामक काव्य, सूरदास-प्रागनि आदि कवियों के 'भ्रमरगीत' ।

(घ) **कृष्ण-सुदामा-मंत्री-सम्बन्धी सुदामाचरित्र**—जैसे नरोत्तमदास का 'सुदामा-चरित' आलम, गंग, बीरबल, प्राणनाथ, गोपाल आदि अनेक कवियों के 'सुदामा-चरित' काव्य ।

(ङ) **अन्य कृष्ण-लीलाओं से सम्बन्धित काव्य**—जैसे १. **रासलील-विषयक** नन्ददास, हरिराम व्यास, दामोदर स्वामी आदि कृत 'रास पंचाध्यायी' रचनाएँ । २. **दानलीला-विषयक** परमानन्ददास, गिरिजेन्द्र, ध्रुवदास, रसखान आदि अनेक कवियों के 'दानलीला' काव्य । ३. **नागलीला-विषयक** सांया जी की 'नागदमन', गंगाधर की 'नागलीला' आदि । ४. उदय-कृत 'चीरहरणलीला' आदि ५. गोवर्धन लीला (नन्ददास-कृत) तथा उदयकृत गिरिवरधरलीला आदि ।

(च) **कृष्ण-गोपी या राधा-कृष्ण-प्रेम-सम्बन्धी काल्पनिक खण्डकाव्य**, जैसे नन्ददास-कृत 'रूप मंजरी', 'विरह मंजरी', बालकृष्ण-कृत 'प्रतीत परीक्षा' आदि ।

अन्यत्र हमने इस परम्परा के भिन्न-भिन्न खण्ड काव्यों का कुछ विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्री हितहरिबंश गोस्वामी

जीवनवृत्त—श्री हितहरिवंश के पिता श्री व्यास मिश्र सहारनपुर जिले के देववन्द स्थान-निवासी थे। संभ्रांत कुल के गौड़ ब्राह्मण थे। श्री व्यास मिश्र अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। कहा जाता है कि उनका सम्बन्ध किसी राज-दरबार से था जहाँ उन्हें 'चार हजारी' का मनसब प्राप्त हुआ था। इसी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त चाचा वृन्दावन दास ने भी अपनी एक बधाई में हित जी के पिता को धर्मशील, ऋषि-राज, ज्योतिषाचार्य, वेदज्ञ आदि गुणों से विभूषित किया है।

कहा जाता है कि धन-वैभव होते हुये भी हित जी के माता-पिता पुत्र-अभाव से खिन्न थे। आखिर भगवान की कृपा से उन्हें पुत्र-प्राप्ति हो गई। अपनी व्रज-यात्रा के समय हित जी की माता तारा रानी ने मथुरा के निकटवर्ती ग्राम बाद में बालक हरि-वंश को जन्म दिया। मिश्रबंधु आदि कुछ विद्वानों ने देववन्द को ही संभवतः इस कारण हित जी का जन्मस्थान मान लिया क्योंकि उनके पिता देवबन्द-निवासी थे। पर उनकी व्रज-यात्रा और बाद ग्राम में पुत्रोत्पत्ति का उल्लेख कई प्राचीन रचनाओं में मिलता है। इस बाद ग्राम में सं० १५५९ वि० की वैसाख शुक्ला एकादशी दिन सोमवार को हित हरिवंश का जन्म हुआ था।

राधाबल्लभीय श्री गोपालप्रसाद शर्मा-रचित 'हित-चरित्र' आदि एक-दो रच-नाओं में इनका जन्म संवत् १५३० दिया हुआ है, जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "सब घटनाओं पर विचार करने से ठीक नहीं जान पड़ता।" कई प्राचीन वाणियों संवत् १५५९ का ही उल्लेख मिलता है।

श्रीजयकृष्ण, श्री अतिबल्लभ की वाणी, उत्तमदास-कृत 'रसिकमाल' आदि और भी कई काम्प्रदायिक प्राचीन वाणियों से संवत् १९५९ की ही पुष्टि होती है। श्री भगवत मुदित-विरचित 'रसिकमाल' की एक प्रति में श्री हित हरिवंश के जन्म संवत् १५५९ का दो जगह उल्लेख हुआ है। पर आरम्भ के उल्लेख को मिटाकर उसकी जगह संवत् १५३० लिखने का असफल प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में डा० विजयेन्द्र स्नातक का मत उल्लेखनीय है : "श्री हरिवंश जी के जन्म संवत् १५३० को ठहराने का एक बाह्य कारण हमें अपनी छानबीन से यह विदित हुआ कि कतिपय बंगाली पत्र-पत्रिकाओं में श्री हितहरिवंश-रचित ग्रंथों को दूसरे महानुभावों द्वारा लिखित सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था। वृन्दावन के एक चैतन्य-साम्प्रदायानुयायी गोस्वामी ने

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

'हित-चौरासी' के तीन-चार पदों को सूरदास-लिखित बताया, यद्यपि उनका सूरदास की अभिव्यंजना-शैली, भाषा तथा विषय-वस्तु से साक्षात कोई संबंध नहीं है। इस चेष्टा से विचलित होकर राधावल्लभीय लेखकों की ओर से यह प्रयत्न हुआ कि हितहरिवंश जी का सूरदास से पहले उत्पन्न होना सिद्ध किया जाये। सूरदास तथा बल्लभाचार्य से पहले सिद्ध करने की भावना के कारण ही कदाचित जन्म संवत् को १५५६ के स्थान पर १५३० लिखा गया।''[1]

हमारा भी यही अनुमान है कि साम्प्रदायिक भावना के कारण, श्री हितहरिवंश को सूरदास, बल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास से पूर्ववर्ती बताने की भावना ने ही संवत् १५५६ के स्थान पर १५३० सं० रखने की प्रवृत्ति को जन्म दिया होगा। कृष्णभक्ति के इन चारों सम्प्रदायों—बल्लभ सम्प्रदाय, चैतन्य साम्प्रदाय, हरिदासी और राधाबल्लभ-साम्प्रदाय—का केन्द्र-स्थान वृन्दावन बना हुआ था। इनके अनुयायी भक्तों में पारस्परिक मुठभेड़ होती रहती थी। अपने सम्प्रदाय और प्रवर्त्तक गुरु को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ ने बहुत-सी प्रामाणिक बातों को विकृत कर दिया। साम्प्रदायिक भावना ने ही हितहरिवंश जी के शैशव के साथ अलौकिक चाभत्कारिक घटनाएँ जोड़ दीं। बाल्यकाल में में स्वप्न में श्री प्रियाजी से प्रेरणा और गुरु-मंत्र प्राप्त करने की बातें ऐसी ही कपोल-कल्पित हैं।

किंदतन्तियों की यह बात सत्य हो सकती है कि छोटी अवस्था से ही हरिवंश जी की प्रवृत्ति राधा-कृष्ण-प्रेम पर रीझने की हो गई हो और उन्होंने श्री राधा को सपने में देखा हो तथा अपना गुरु बना लिया हो। अन्त:साक्ष्य तथा बाह्य साक्ष्य दोनों से श्री राधा जी के ही इनके गुरु होने का उल्लेख मिलता है। कुछ विचारकों ने गौड़ीय सम्प्रदाय के श्री गोपाल भट्ट को हित जी का दीक्षा-गुरु मान लिया था पर अब यह भ्राँति दूर हो गई है। साम्प्रदायिक भावना के कारण ही यह प्रचारित किया गया कि अपना स्वतंत्र सम्प्रदाय स्थापित सरने से पूर्व श्री हरिवंश गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित थे।

चाचा वृन्दावनदास आदि सम्प्रदायी भक्तों ने हित जी के शैशव काल की जो चमत्कारी घटनाएं लिखी हैं उन पर विश्वास करना कठिन है। हाँ, इतना अवश्य माना जा सकता है कि बाल्यकाल से हरिवंश जी की प्रवृत्ति धर्म और भक्ति में हो गई थी। १६ वर्ष की आयु में हित जी का विवाह रुक्मिणीदेवी के साथ हुआ जिनसे इनके तीन पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। संवत् १५८५ में ज्येष्ठ पुत्र वनचंद्र उत्पन्न हुआ, १५८७ में कृष्णचंद्र ओर सं० १५८८ में तृतीय पुत्र गोपीनाथ का जन्म हुआ। पुत्री साहिबदे संवत् १५८९ में जन्मी।

सं० १५८५ वि० में हितहरिवंश की मावा तारावती का तथा १५९० वि० में पिता व्यास मिश्र का देहांत हो गया। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् हरिवंश जी वृन्दावन आ गए। उत्तमदास-कृत 'रसिकमाल' आदि एक-दो रचनाओं में साम्प्रदायिक भावना के कारण वृन्दावन-आगमन का यह प्रसंग कल्पित किया हुआ हैकि जब हरिवंश जी ने अपनी व्रजयात्रा आरम्भ की तो उन्हें एक रात सपने में श्यामा जी ने कहा कि

१. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धांत श्रौर साहित्य, द्वितीय संस्करण, पृ० ९१

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

रास्ते में एक चिरथावल गाँव में एक ब्राह्मण रहता है; वह अपनी दो कन्याओं का तुम्हारे साथ विवाह करेगा, तुम उन्हें स्वीकार कर लेना, वे तुम्हारी भक्त में बाधक न होंगी। श्री श्यामा ने यह भी कहा कि वहाँ मेरा एक मूर्ति-रूप मिलेगा, उसे वृन्दावन ले जाकर मन्दिर में स्थापित करना। हरिवंश जी ने इसी तरह सब किया। इस प्रसंग और घटना पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

वृन्दावन उस समय कृष्ण भक्ति का केन्द्र बना हुआ था। स्वामी हरिदास और उनके हरिदासी सम्प्रदाय के भक्त-कवि, बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य और सूर आदि अष्ट-कवि, गौड़ीय सम्प्रदाय के श्री रूप गोस्वामी आदि भक्त-आचार्य सब वृन्दावन में जमा थे। स्पष्ट है कि हित जी ने इन सम्प्रदायों और उनकी साधना-पद्धतियों का परिचय प्राप्त किया होगा। हरिवंश जी ने वृन्दावन का महत्त्व समझकर वहाँ अपना स्थायी वास बना लिया। इस आरंभिक स्थापना-कार्य में नरवाहन नामक मैगाँव-निवासी एक प्रभावशाली जमींदार ने हरिवंश जी बड़ी सहायता की। नरवाहन हितहरिवंश जी कीं। धर्म-प्रवृत्ति और भक्ति-भावना से बहुत प्रभावित हुआ था और उनका शिष्य बन गया था। हरिवंश जी ने वृन्दावन में कई मन्तिर बनवाये और उनमें श्री जी की प्रतिमाएँ स्थापित की नरवाहन ने भी अपनी समस्त धन-दौलत श्री जी के चरणों में समर्पित कर दी।

वृन्दावन में श्री हितहरिवंश ने साधना के लिए चार 'सिद्ध केलिस्थल' स्थापित किए। इनमें से एक सेवाकुँज नामक केलि-स्थान पर हरिवंश जी ने श्री राधाबल्लभ की मूर्ति सर्वप्रथम स्थापित की। इस मूर्ति-स्थापना के साथ ही हरिवंश जी ने अपने विशिष्ठ उाधना-पद्धति और अष्टयाम सेवा विधिवत् आरम्भ की। सेवाकुँज की यह स्थापना सं० १५३१ में हुई थी। इसके वाद दूसरा केलि-स्थान मानसरोवर नाम से स्थापित किया गया और फिर रासमंडल और वंशीवट की स्थापना हुई। हितहरिवंश द्वारा स्थापित ये चारों स्थल आज भी वृन्दावन में वर्तमान हैं। इनका महात्म्य आज तक अक्षुण्ण है।

भक्ति-दर्शन-संबंधी हरिवंश जी के विचारों और साधना की नई पद्धति से इनकी ख्याति बढ़ने लगी। केलि-स्थलों की स्थापना से भी इनका प्रभाव पड़ा। दूर-दूर से भक्तजन इनके दर्शनार्थ आने लगे। चतु: सिद्धकेल-स्थलों की स्थापना ही राधा बल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना समझनी चाहिए। यह लगभग सं० १५९१-९२ का समय रहा होगा। बल्लभ सम्प्रदाय आदि अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की की महत्ता और युगलोपासना अपनाई जाने लगी। हितहरिवंश का प्रभाव दूर-दूर तक फैलने लगा। हरिराम व्यास-जैसे प्रकाण्ड विद्वान इनके शिष्य बने।

हित जी ने ब्रजभाषा में केवल १०८ पद रचे जिनमें इन्होंने अपनी रस पद्धति के अनुसार प्रेमभक्ति का सुन्दर गान प्रस्तुत किया है। 'राधासुधानिधि' नामक इन्होंने एक संस्कृत रचना भी की, जो श्रीराधा जी की स्तुति का स्त्रोत-ग्रंथ है। ब्रजभाषा के ८४ पद 'हित चौरासी' या 'हितचतुरासी' नाम से संगृहीत हैं। ये पद माधुर्यभक्ति के प्रेरक और रस-सेवा के आधार बन गए। 'हितचौरासी' राधाबल्लभ सम्प्रदाय का

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

आधार-ग्रंथ बन गया और अनेक भक्त और वैष्णव इन पदों को गाकर झूम उठे। हित जी के कुछ स्फुट पद और मिलते हैं जिनमें से लगभग आधे अर्थात् दस-बारह पदों और दोहों में गूढ़ सिद्धांत-निरूपण हुआ है। हित जी आठ श्लोकों की एक छोटी 'यमुनाष्टक' रचना भी मानी जाती है, जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इसमें यमुना की स्तुति में आठ श्लोक हैं।

केवल ५० वर्ष की अल्पायु में ही हित जी निकुँज सिधार गए। सभी साम्प्रदायिक वाणियों में उनका निकुंजगमन काल सं० १६०६ के आश्विन मास की शरद् पूर्णिमा लिखा मिलता है। केवल ३२ वर्ष कीं अल्पायु में सम्प्रदाय की स्थापना और शिष्यों की एक परंपरा खड़ी कर देना जितना आश्चर्यजनक है, उतना ही आश्चर्य इस बात से होता है कि हित जी केवल ५० वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। संभवतः इस बात पर सहसा विश्वास न हो पाने के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि दो-तीन विद्वानों ने हित जी का वर्तमनकाल सं० १६४० तक अनुमानित किया है। आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास में माना है कि हरिराम व्यास सं० १६२२ के लगभग हितहरिवंश के शिष्य हुए थे। इसी आधार पर शुक्ल जी ने हित जी का वर्तमान होना सं० १६२२ के पश्चात् लगभग १६४० वि० तक मान लिया। परन्तु भगवत मुदित और उत्तमदास जी की रचनाओं में व्यास जी का वृन्दाव-आगमन सं० १५६१ में कहा गया है। तभी वे हितहरिवंश जी के शिष्य हो गये थे। इसके अतिरिक्त हित जी के निधनोपराँत उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र जी साम्प्रदाय की गद्दी पर सं० १६०६ में ही बैठे थे---यह तथ्य न केवल सम्प्रदायों की वाणी-रचनाओं से पुष्ट होता है, अपितु मन्दिर की गद्दी-परंपराओं के उल्लेख से भी सिद्ध होता है। अतः सं० १३०६ में ही हरिवंशजी का निकुंज-प्रवेश मानना उचित है।

हित जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावी था। उनकी निर्लोभता, उदारता, सहिष्णुता आदि सद् प्रवृत्तियों का उल्लेख भगवत् मुदित जी की 'रसिक अनन्यमाला' तथा सेवक जी की वाणी आदि कई रचनाओं में मिलता है। सम्प्रदाय में हितहरिवंश को वंशी का अवतार माना जाता है। उनकी वाणी वेणुनाद के समान मानी जाती है। उन्हें राधाबल्लभ सम्प्रदाय का आचार्य और परात्पर तत्त्व माना जाता है। उनकी जन्मबधाइयों तथा 'मंगलों' का गान सेवक जी, चाचा वृन्दावन आदि समी सम्प्रदायी भक्तों ने किया है। जिस प्रकार हरिदासी सम्प्रदाय में हरिदास जी को अवतार माना जाता है, उसी प्रकार राधाबल्लभ सम्प्रदाय में श्री हितहरिवंश को सखी-रूप में ललिता आदि आठ प्रधान सखियों में भी सबसे अधिक अन्तरंग माना जाता है।

शृंगार-वर्णन

श्री हितहरिवंश के पदों में राधा-कृष्ण के प्रेम का जो स्वरूप वर्णित हुआ है, वह रसानुभूति की दृष्टि से पाठक को शृंगार रस की ही अनुभूति कराता है। चाहे स्वयं कवि ने सखी-भाव से राधाकृष्ण की प्रेम-केलि का गान और अन्तः दर्शन करके अपने आराध्य-युगम के प्रति अपनी भक्ति-भावना ही प्रकट की हो, पर काम-क्रीड़ाओं

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

की स्थूलता पाटक के मन में किसी प्रकार के भक्ति-भाव को नहीं जागने देती। निश्चय ही यह स्थूल ऐकान्तिक श्रृंगार है।

सौंदर्य-वर्णन—कृष्ण-काव्य नर-नारी-सौंदर्य-वर्णन में अद्वितीय है। नूर (कृष्ण) के सौंदर्य का चित्रण कृष्ण-काव्य की ही विशेषता है। सूरदास व नन्ददास आदि अष्टछापी कवियों ने कृष्ण की सौंदर्य-श्री के जो विविध चित्र प्रस्तुत किए हैं, वे राधावल्लभ सम्प्रदायी कवियों में नहीं मिलते। श्री हितहरिवंश की रस-रीति में राधा की प्रधानता है : यहाँ श्री राधा भोग्या हैं और कृष्ण भोक्ता या आश्रय है, अतः यहाँ नारी-सौंदर्य की प्रधानता है, कृष्ण का सौंदर्य बहुत कम चित्रित हुआ है। यद्यपि श्री राधा के अद्भुत रूप का वर्णन श्री हित हरिवंश और उनके अनुयायियों ने अनेक पदों में किया है, पर सूरदास के रूप-सौंदर्य-वर्णन की ऊँचाई तक वे नहीं पहुँच सके। हित जी के कई पदों में राधा की शोभा और सौंदर्य-श्री का वर्णन हुआ है। कुछ विचारकों ने हितहरिवंश और उनके सम्प्रदाय के प्रति पक्षपात प्रकट करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि "रूप-सौंदर्य-चित्रण की दृष्टि से हित-चौरासी के पद भक्तिकालीन कवियों में श्रेष्ठतम कहे जा सकते हैं।"[1] परन्तु हमारा निवेवन है कि हितहरिवंश का रूप-सौंदर्य-वर्णन सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछापी कवियों की तुलना में बहुत फीका है। हित-जी ने विशुद्ध सौंदर्य-वर्णन के बहुत ही कम पद रचे हैं, अधिकतर पदों में सौंदर्य के प्रभाव का ही वर्णन हुआ है। जिन दो-चार पदों में राधा का रूप-चित्रण हुआ है, उनमें भी संश्लिष्ट रूप-चित्रों का वह आकर्षण नहीं जो सूर, नन्ददास के पदों में मिलता है। फिर भी एक-दो पदों में शिख-नख रूप में राधा का रूप-चित्रण 'हित चौरासी' में अच्छा हुआ है। एक दो उदाहरण देखिए : राधा के अंग-अंग सहज माधुरी (माधुर्य) छाई हुई है जिसने श्याम को मुग्ध कर रखा है। उसके गूंथे बालों की कवरी और लटों के बीच सुनहरी कमल-सा मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो अर्द्धचन्द्र को फनी ने ग्रस लिया हो। उसकी भँवें कामदेव के धनुष-सी सुन्दर हैं। नैनों में काजल की नोकीली रेखा तीर की नोक है, भाल पर स्निग्ध-तरल तिलक, गण्डस्थल पर झलकते ताटंक और नाक में चमकती मणि, कुन्दकली-से सफैद दाँत, कोमल किसलय-से सरस अधर हैं जो प्रियतम के मन को सुख देते हैं। चिबुक के मध्य तिल का काला बिन्दु शोभा बढ़ा रहा है, कसी हुई कंचुकि में उभरे हुए कुच, मोहन के मीन-रूपी मन के खेलने-हेतु गंभीर नाभिकुण्ड, कृश कटि, पृथु नितम्ब, कदली-तने-जैसी जंघाएँ, जावक-युक्त रक्त चरण-कमल ! ऐसी सौंदर्य की राशि ललना अपने प्रियतम के हृदय का आभूषण क्यों न बनेगी :

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुटमणि श्यामा आजु बनी।
नखशिख लौं अंग-अंग माधुरी मोहे श्याम धनी।
यों राजत कवरी गूंथित कच, कनक कंज वदनी।
चिकुर चंद्रकनि बीच अर्ध विधु मानो ग्रसित फनी।

---

1. डा० विजयेन्द्र स्नातक : राधावल्लभ संम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ३१३

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भृकटि काम कोदंड, नैन सर कज्जल-रेख अनी।
तरल तिलक, तांटंक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुंद, सरसाधर पल्लव प्रीतम यन शमनी।
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल बिन्दु कनी।
प्रीतम प्राण रतन संपुट कुच कंचुकि कसवि तनी।
नाभि प्राण गंभीर, मीन मोहन मन खेलन की हृदनी।
कृश कटि, पृथु नितम्बकिंकिणि व्रत, कदली खंभ जघनी।
पद अम्बुज जावक जुत, भूषन प्रीतम उर जबनी।

—हित चौरासी पद २६

इस शिख-नख रूप-चित्रण में उपमान योजना परम्परायुक्त ही है, पर राधा की रूप-छवि का पर्याप्त संश्लिष्ट चित्र यहाँ अंकित हो गया है। पूरे नख-शिख-वर्णन के पद 'हितचौरासी' में दो-चार ही हैं। रूप-चित्रण में नैनों की छवि का विशेष चित्रण कवियों का प्रिय विषय होता है। सूरदास ने राधा और कृष्ण के अनियारे, चंचल और बंक नेत्रों का अनेक पदों में भव्य चित्रण किया है। हित जी ने राधा के अनियारे, चपल-चंचल नयनों का विशेष चित्रण दो-तीन पदों में किया है। एक उदाहरण देखिए। इन नैनों की बात कहां तक कही जाय, इन्होंने खंजन, मीन, मृग-छौना—सबका मद चूर कर डाला, कोई उपमान इनकी तुलना में ठहरना ही नहीं। हे सुन्दरी राधे! सच वताना, तुमने इन्हें मोहन के वश में करने की ऐसी कितनी घातें सिखा रखी हैं? इन बंक, निडर, चपल-चंचल, तीखे और तीनों वर्णों (अरुण, श्याम और सित) वाले नेत्रों की रचना कैसे हो गई? अपने मृदुल-मादम और मधुर कटाक्षों से ये सबका सर्वस्व हरण कर लेते हैं—जरा भय नहीं मानते—

खंजन मीन, मृगज मदद मेटत कहा कहौं नैनन की बातें।
सुनि सुन्दरी कहा धौं सिखाई मोहन वसीकरन की घातैं॥
बंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण श्याम सित रचे कहां तें।
डरत न हरम परायौ सर्वसु मृदु मधुमिव मादक दृग पातें॥ (पद ७३)

यह रूप-चित्रण अत्यन्त मादक एवं इन्द्रियोत्तेजक है। हितहरिवंश जी ने युगल की काम-केलि का खुला चित्रण किया है। राधा के चंचल मदमाते नेत्रों की 'वक्र-बिलोकनि' सुरत समय कितनी उत्तेजक होती है, इन पंक्तियों में देखिए : कृष्ण राधा के इन चंचल-चपल अरुण अनियारे नेत्रों पर करोड़ों खंजन पक्षियों को न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। उसकी मनोहर वक्र विलोकनि सुरत-समर को उत्तेजित करने वाली है :

नैनन पर वारौं कोटिक खंजन।
चंचल चपल अरुण अनियारे अग्रभाग बन्यौ अंजन॥
रुचिर मनोहर वक्र विलोकन सुरत समर दल गंजन। (पद २२)

सूरदास आदि अष्टछापी कवियों ने कृष्ण-दरस के प्यासे राधा व गोपियों के नेत्रों का वर्णन किया है। हित जी की रस-रीति में, इसके विपरीत, कृष्ण प्यासे हैं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

राधा की रूप-छवि की एक झलक पाने के लिए कृष्ण के नेत्र लालायित रहते हैं। ये नयन-भ्रमर प्रिया राधा के मुख-कमल का ही रसमान करते हैं, पल-भर को इधर-उधर नहीं जाते। निमेष-मात्र अर्थात् पलक झपकने-भर का अन्तराय इन्हें व्याकुल कर देता है। ये रस-लोभी नेत्र राधा की आँखों में अंजन, कुचों में मृगमद और नाभि-कुण्ड में मीन की तरह समा जाना चाहते हैं :

कहा कहीं इन नैननि की बात।
ये अलि प्रिया बदन अम्बुज रस अटके अनत न जात।।
जब-जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलात।
लम्पट लव निमेष अन्तरते अलप कलप सत जात।
श्रुति पर कंज, दृगंजन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात।
हित हरिवंश नाभि-सर जलचर जाँजत साँवल गात।। (पद ६०)

हितपरिवंश की 'स्फुटवाणी' एवं 'हित चौरासी' में एक-एक पद कृष्ण के रूप-सौंदर्य-वर्णन का भी मिलता है। इस रूप-वर्णन में वैसी सजीवता और चित्रामकता नहीं जो राधा-रूप-वर्णन में है। कृष्ण के श्यामशरीर, मनहरन मुस्कान आदि की रूप-माधुरी का निम्न पद में वर्णन देखिए :

लाल की रूप माधुरी नैननि निरखि नैकु सखी।
मनसिज-मनहरन हास, साँमरी-सुकुमारि-राशि,
नखसिख अंग अंगनि उमगि सौभग सींव नखी।। ---स्फुटवाणी

विभाव के अन्तर्गत नारी-सौंदर्य का एक और अंग है - नायिका के अंगज और अयत्नज अलंकार। वेश-भूषा तथा शारीरिक सौंदर्य के अतिरिक्त यौवनागमन के साथ नारी में जो अयत्नज हाव-भाव, चेष्टाएँ आदि प्रकट होती हैं जो प्रेम भाव-प्रेरित नहीं होतीं —वे सब विभाव-पक्ष के अन्तर्गत ही आती हैं। इस प्रकार बाह्य रूप-सौंदर्य के साथ-साथ नायिका के आंतरिक गुण—धैर्य, औदार्य, चातुर्य, माधुर्य आदि भी उसके विभावत्व को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। राधा न केवल रूप की आकरी है, अपितु वह चतुर नागरी, सुशीला, मधुबैनो, कोक-कला-कुशल तथा उदार सुकुमारी है और गुण-आगरी भी है :

''आजु नीकी बनी राधा नागरी।
ब्रज जुवति जूथ में, रूप अरु चतुरई शील सिंगार गुण सबन तें आगरी।''
''नगरी निकुंज ऐन, किसलय दल रचित शैन,
कोक कला-कुशल कुंवरि अति उदार री।''

इस प्रकार अनिंध सुन्दरी राधा अपने रूप, गुण, शील से सबको मोहित करने वाली भव्य आलम्बन बनी हुई है। वह मधु-बोलनि और मृदु-सरस हासिनी भी है। नृत्यरत राधा का भव्य रूप देखिए—**''निर्तनि भृकुटि बदन अम्बुज मृदु सरल हास मधु बोलनि।''** वृषभानु-नन्दिनी न केवल सुन्दर वस्त्र-भूषण धारण कर साज-शृंगार करती हैं अपितु वह हाव, भाव, कटाक्ष आदि से भी नन्दन नन्द को रिझाती और सखियों को आनन्दित करती हैं।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

बनी वृषभानु नन्दिनी आजु।
भूषन बसन विविध पहरे तन पिय मोहन हित आजु॥
हाव, भाव, लावन्य भृकुटि लट हरत जुवति जन पाजु॥

रूपासक्ति—इस रूप-गुण-चित्रण के साथ ही **रूपाशक्ति** का भव्य वर्णन कृष्ण-काव्य में पाया जाता है। हितहरिवंश जी के पदों में अधिकतर राधा के प्रति कृष्ण की रूपासक्ति का वर्णन हुआ है। एक-दो पदों में राधा या गोपी सखी की कृष्ण के प्रति रूपासक्ति का भी वर्णन मिलता है। एक पद देखिए : कृष्ण की छेड़छाड़, बाँकपन, मुरली की सरस तान तथा रूपमाधुरी ने कैसी नैन-ठगौरी लगा दी!

नन्द के लाल हर्‌यौ मन मोर।
हौं अपने मोतिन लर पोवति कांकरि डारि गयौ सखि भोर।
बंक बिलोकनि चाल छबीली नसिक शिरोमणि नंदकिशोर॥
कहि कैसे मग रहत श्रवण सुनि सरस मुरली की घोर॥
इन्दु गोविन्द बदन कें कारण चितवन कें भए नैन चकोर॥

कृष्ण की मधुर मुरली-ध्वनि, कुंजों-निकुंजों का निभृत मनोहर वातावरण, वर्षा-वसंत आदि सुन्दर ऋतुएँ सब मिलकर **उद्दीपन** का कार्य करती हैं। ऐसी मादक परिस्थिति में मन प्रिय के साथ क्यों न बंध जाय! ऐसी प्रेम-ठगौरी पड़ गई है कि लोक-लाज, रीति-नीति का कुछ भय नहीं रहा। बहाने-बहाने भी कृष्ण-दरस की प्यास बुझाने का प्रयास होता है और 'निधरक' रूप से भी—

देखौ माई अवला के बल रास।
अति गज मत्त निरंकुस मोहन निरखि बंधे लट पाश॥
अबही पंगु भई मन की गति बिनु उद्यम अनियास।
तब की कहा कहौं जब पिय प्रति चाहति भ्रकुटि विलास॥
कच संजमन व्यास भुज़ दरसति मुसकनि बदन विकास।
हा हरिवंश अनीति रीति हित कत डारत तन त्रास॥

राधाबल्लभ सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण का मिलन नित्य है। अत: हित जी की रचना में रूप-दर्शन, साक्षात्कार, मिलन आदि में कोई पूर्वापर क्रम नहीं है। उपर्युक्त रूप-चित्रण, रूपासक्ति आदि सब राधा-कृष्ण के नित्य मिलन और नित्य विहार का ही अंग-हैं। केवल शृंगार रस के अध्ययन की दृष्टि से हम उन्हें विभावादि के क्रम में रख सकते हैं। राधाकृष्ण का नित्य विहार-वर्णन ही 'हितचौरासी' का मुख्य विषय है। इस नित्य मिलन में काम-चेष्टाओं की भरमार है। यद्यपि सुरत का खुला वर्णन हित जी के पदों में स्वल्प है, पर सुरतारंभ और सुरताँत-वर्णन की कोई कमी नहीं। राधा-कृष्ण आनन्द-मग्न हुए कुंजविहार करते हैं। दोनों की जोड़ी भूतल पर अद्‌भुत है, उनका परस्पर अनुराग अनुपम है। पराग और कर्पूर की सुगन्धि से पूर्ण निकुंज में कोमल किसलय की सुन्दर सेज बनी है। सुरतारंभ की तैयारी पूरी है। श्याम ने गोरी राधा को सेज पर बिठाया, हास-परिहास, चुम्बन, परिरंभन के बाद नीवी-बंधन खोलने का उपक्रम होता है। तभी सहसा राधा की दृष्टि प्रिय के उर-मुकुर पर जाती है। वहाँ अपने ही

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

'प्रतिबिम्ब' को देखकर राधा को भ्रम हो जाता है कि कृष्ण के हृदय में तो कोई और सुन्दरी समाई हुई है। बस राधा मानवती हो जाती है। कृष्ण राधा की चिबुक पकड़कर प्रेमपूर्वक प्रतिबिम्ब की असलियत समझाते हैं, पर राधा तो 'नाहीं नाहीं' की रट लगा देती है जिसे सुनती हुई और प्रेमलीला को कुंज-रंध्रों से चोरी-चोरी देखती हुई ललिता आदि सखियां आनन्दलाभ करती हैं—

कोमल किसलय शयन सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी।
मिथुन हास-परिहास परायन पीक कपोल कमल कर झोरी ।।
गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीबी बंधन मोचत डोरी।
हरि उर मुकुर विलोकि अपनपौ विभ्रम विकल मानयुत भोरी ।।
चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधत पिय प्रतिबिम्ब जनाय निहोरी ।।
नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि ललितादिक देखत दुर चोरी।
हित हरिवंश करत करधूनन प्रणयकोप मालावलि तोरी ।।

—हित चौरासी पद ७

हितहरिवंश के राधा-कृष्ण-शृंगार-वर्णन का मुख्य यही स्वरूप है। इसमें वियोग के लिए कोई स्थान नहीं। विप्रलंभ के जो मुख्य तीन भेद शास्त्रकारों ने माने हैं—पूर्व-राग, मान, प्रवास—राधा-कृष्ण के नित्य-मिलन और विहार में वे संभव नहीं। यहाँ मान है; पर वह विप्रलंभ का रूप ग्रहण नहीं करता। यह मान भी संयोग का ही मान है। अष्टछापी कवियों ने व्रज के चार प्रकार के विरह का वर्णन किया है—प्रत्यक्ष विरह, पलकांतर विरह, वर्नातर विरह और देशांतर विरह। इनमें प्रत्यक्ष-विरह और पलकांतर विरह वास्तव में अधिकाधिक के दर्शन-पान की आकुलता के ही द्योतक होते हैं जिन्हें विरह नहीं माना जा सकता। हित जी आदि राधाबल्लभीय वाणीकारों ने 'प्रत्यक्ष विरह', 'पलकांतर विरह' और क्षणिक मान का ही वर्णन किया है, जो संयोग के ही उत्तेजक, उसी के रूप हैं। न यहाँ बनांतर विरह है, न देशांतर और न ही पूर्व-राग और दीर्घमान को स्थान मिला है। उपर्युक्त पद में राधा का मान क्षणिक है। वह थोड़ी देर कृत्रिम मान जताकर और 'नाहीं-नाहीं' करके संयोग-रति में आनन्द-रस ही घोल रही है। युगल-किशोर साथ रहते हुए भी विरह की-सी अतृप्ति का अनुभव करते रहते हैं। प्रत्यक्ष विरह यही है। देखते हुए भी पलकांतराय खलता है : **जब जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलान'** —यह पलकांतर विरह है। इसी प्रकार क्षणिक मान भी प्रेमोद्दीपक बनकर अतृप्ति जगाता है। राधा के जरा-सा मुंह फेर लेने या फुला लेने पर कृष्ण अपनी दीनता प्रकट करते हैं, राधा के चरणों में नत होकर अनुनय-विनय करने लगते हैं। थोड़ी देर के इस अभिनय के बाद सखी दोनों का मिलन करा देती है, जो पहले से कहीं अधिक अत्कट और उन्मादक होता है। सखी राधा का मान छुटाती हुई कहती है—

छांड़ि दै मानिनी मान मन धरिबौ।
प्रणत सुन्दर, सुधर प्राणबल्लभ नवल, बचन-अधीन सौं इतौं कत करिबौ ।।

—हित चौ० पद ८३

और कुंज-भवन में फिर मिलन होता है। वर्षा की फुहारें पड़ रही हैं, दोनों

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रेम-रस में भीज रहे हैं, मधुर वर्तालाप में मग्न हैं। सखियाँ रस की घातों का आनन्द लूट रही हैं :

दोऊ जन भीजत अटके बातन।
सघन कुंज के द्वारे ठाड़े अम्बर लपटे गातन ॥
ललिता ललिता रूप रस भींजी बूंद बचावत पातन।
हितहरिवंश परस्पर प्रतम मिलबत रति घातन ॥ —स्फुट वाणी पद २३

दिनभर 'दरस-परस' होता है और रात-भर सुरत। राधा की सुरतांत अवस्था को सखियां पहचान लेती हैं, भला नागर-मधुप द्वारा नागरी का करना मंथन कहीं छिपाये छिप सकता है ? राधा की सुरतांत-छवि का वर्णन करते हरिवंश जी नहीं अघाते—

तू रतिरंग भरी देखिनत है री राधे रहसि रमी मोहन सौं रैन।
गति अति शिथिल, प्रकट पलटे पट, गौर अंग पर राजत ऐन ॥
जलज कपोल, ललित लटकति लट, भृकुटि कुटिल ज्यौं धनुष धृत मैन।
सुन्दरि सहव, कहब, कंचुकि, कत कनक-कलश-कुच बिच नख दैन ॥
अधर बिम्ब दलमलित, आरस युत अरु आनन्द सूचत सखि नैन।
हितहरिवंश बुरति नहिं नागरि, नागर मधुप मथत सुख सैन ॥

—स्फुटवाणी पद १०

इस निकुंज-विहार में कभी वन-हिण्डोला होता है, तो कभी अन्य क्रीड़ाएँ। रात्रि के रतिरंग के पश्चात् युगल-किशोर प्रायः झूला झूलते हैं। दोनों अनुराग-भरे मंद मधुर स्वर में गान करते हैं। सुकुमारी राधा हिंडोर की झकोर से डर-डर जाती है और प्रिय के उर से लपटाती है। दोनों की प्रेमलीला कितनी आनन्ददायक है—

झूलत दोऊ नवल किसोर।
रजनी-जनित रंग सुख सूचत अंग-अंग उठि भोर।
अति अनुराग भरे मिलि गावत सुर मंदर कल धोर ॥
निरखि-निरखि फूलति ललतादिक विवि मुख चन्द्र चकोर ॥

हितहरिवंश का शृंगार-वर्णन अत्यन्त सीमित है। उसमें अनुभावों तथा संचारी भावों की वह विविधता और छटा नहीं है जो सूरदास, नंददास के काव्य में पाई जाती है। अधिकांश पदों में सुरत, आलिंगन, चुम्बन आदि स्थूल अनुभवों का परिचय मिलता है। सुरत-समय राधा की 'नेति-नेति' का हरिवंश जी ने कई जगह आनन्द लिया है। इस **'कुट्टमित'** अनुभाव का उदाहरण देखिए :

'वधू कपट हठि कोप कहत कल नेति नेति मधु बोल'
'मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीवि हार।
वेपथुयुत नेति नेति वदति भाविनी।'

इस कृत्रिम या कपट-मान के आश्रय प्रिय-विक्षेस और **विव्वोक** अनुभवों की व्यंजना देखिए :

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पिय चितवत तव चन्द्र वदन तन, तू अधमुख निज चरण निहारत।
वे मृदु चिबुक प्रलोत प्रबोधत, तू भामिनी कर सौं कर टारत॥

मद की मत्त अवस्था इन पंक्तियों में देखिए :

आज सम्हारत नाहिंन गोरी।
फूली फिरत मत्त करिनी ज्यौं सुरसि-समुद्र झकोरी॥

सुरत, विपरीत रति, कामकेलि, परिरंभन, रास-नृत्य आदि स्थूल क्रियाओं के सिवाय इस शृंगार में और कुछ नहीं है। ऐसी स्थूल खुली अभिव्यक्ति इन भक्तों का अन्तर्मन कैसे शुद्ध और पवित्र रखती होगी! हमें तो इसमें भक्ति की कोई बात नजर नहीं आती। निश्चय ही यह सब वर्णन पाठक की दृष्टि से संयोग शृंगार ही है, जिसमें जीवन की उदात्तता भी विशेष नहीं है। विपरीत रति का उल्लेख इन पंक्तियों में देखिए :

परिरंभन विपरीत रति वितरित सरस सुरत निज केलि।
इन्द्रनील मणिमय तरु मानौ लसत कनक की बेलि॥ (हि० चौ० पद ३०)

श्री हितहरिवंश की राधा काम-कला-विशारद है, श्रीकृष्ण 'सुरत-सूर-रनधीर' हैं और इसी से उनका शृंगार-वर्णन काम-क्रीड़ा के सिवा कुछ नहीं। यह ऐकान्तिक प्रेम कुंज-निकुंज तक सीमित है। इसमें जीवन की अन्य तिक्त-मधुर अनुभूतियाँ नहीं। यहाँ तक कि भ्रमर-प्रसंग आदि अष्टछापी कवियों के विविध विषय भी यहाँ लुप्त हैं। केवल मिलन-सुख और इसमें परस्पर तत्सुखी भाव ही इसका कुछ औदात्त्य प्रकट करता है। प्रिया-प्रियतम एक-दूसरे को आनन्दित करने का ही लक्ष्य रखते हैं, राधा कहती है, मुझे जो-जो भाता है, वही प्रिय कृष्ण करते हैं और जो-जो कृष्ण को सुखद लगता है वही मैं करती हूँ...

जोई-जोई प्यारौ करै सोई मोहि भावै,
भावै मोई जोई, सोई-सोई करैं प्यारै॥
मोकौ तौं भावती ठौर प्यारे के नैननि में,
प्यारौ भयौ चाहे मेरे नैननि के तारै॥
मेरे तन मन प्रानहू ते प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मो सौं हारैं॥
हितहरिवंश हंस-हंसिनी सांवल गौर,
कहौ कौन करै जल-तरंगनि न्यारै॥ (हि० चौ० पद १)

यही हरिवंश जी का शृंगार-वर्णन है—एकरस, ऐकान्तिक और ऐन्द्रिक।

भक्तिरस या भक्तिभावना

हितहरिवंश की मुख्य आराध्य श्री राधा हैं। पर उन्होंने श्री राधा का महत्त्व कृष्ण के माध्यम से ही स्वीकार किया है, इसलिए कृष्ण भी स्वत उपास्य बन गये हैं। राधा का महत्त्व इसलिए है क्योंकि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण भी राधा के भक्त एवं अनुरागी हैं। एक पद में हरिवंश जी ने राधा की स्तुति करते हुए कहा है : हे राधा!

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

तू महान है क्योंकि जिसे ब्रह्मा और शिव भी भजते हैं, उन भगवान कृष्ण से तू बन-फूल चुनाती है ! जिस रसरूप भगवान के बारे में वेदों में 'नेति-नेति' कहा गया है, उन्हीं का तू अधर-सुधा-रस चखती है । तेरा रूप अद्भुत है, मैं तेरा कुछ यशगान करने में ही समर्थ हूँ :

सुनि मेरी बचन छबीली राधा, तैं पायौ रस-सिंधु अगाधा ।
जाहि बिरंची उमापति नाये, तापै तैं बनफूल बिनाये ।।
जो रस नेति नेति श्रुति भाख्यौ, ताकौं तू अधर-सुधा-रस चाख्यौ ।
तेरौ रूप कहत नहिं आवै (जै श्री) हित हरिवंश कछुक जस गावै ।।

राधा के साथ एक-दो पदों में हितहरिवंश ने केवल श्रीकृष्ण के प्रति भी अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित की है । अपने आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति का उपदेश देते हुए हरिवंश जी शपथपूर्वक कृष्ण-गुण-गान का महत्त्व बताते हैं । 'हे भाई ! तुम्हें मेरी सौंगंध है, कृष्ण के गुणों का स्मरण करो । संसार के कुत्सित वाद-विवाद, विकार—परधन, परदारा आदि—सब त्याग दो । ब्रजपति को भूलकर साँसारिक वस्तुओं में मोह रखना ऐसा ही है जैसे मणियों को छोड़कर काँच ग्रहण करना । अपना परलोक सुखमय बनाने के लिए इस कुटिल कलियुग में एकमात्र कृष्ण का गुणगान ही सहायक हो सकता है :

तातैं भैया मेरी सौं कृष्ण गुण खंचु ।
कुत्सित वाद विकारहिं परधन सुनु सिख मंद परतिय बंचु ।।
मणिगण पुंज ब्रजपति छांडत हित हरिवंश कर गहि कंचु ।
पाये जान जगत में सब जन कपटी कुटिल कलियुग टंचु ।
इह परलोक सकल सुख पवर मेरी सौं कृष्ण संकु ।। —स्फुटवाणी पद ८

श्री हितहरिवंश वस्तुतः युगलोपासक हैं । उनकी भक्ति-पद्धति का हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं, यहाँ दोहराना व्यर्थ है । उसमें तत्सुखी-भाव एवं सखी-भावयुक्त मधुर रस की अभिव्यक्ति हुई है । राधा-कृष्ण का प्रेम ततसुखसुखित्व भाव पर आधृत है और साथ ही सखी अर्थात् साधक या भक्त भी अपने युगल-किशोर को रति-रसानंद में मग्न देख आनन्दित होता है । एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा — **'झूलत दोऊ नवल किशोर'** वाले पद में कवि ने राधाकृष्ण के झूला झूलने, आलिंगन-मिलन आदि का वर्णन करते हुये अंत में कहा है :

निरखि-निरखि फूलति ललितादिक विवि मुख चन्द्र-चकोर ।
दै असीस हरिवंश प्रशंसित करि अंचल की छोर ।।

ललिता आदि सखियाँ जिस प्रकार कुंजरंध्रों से युगल और उनकी प्रेमक्रीड़ा देखकर आनन्दित होती हैं, उसी प्रकार भक्त भी इस प्रेम-गान से अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं । यही हरिवंश जी की भक्ति का रूप है । युगल की अष्टयाम-सेवा और नैमित्तिक सेवा के अवसरों पर गाये जाने वाले पद जैसे मंगला, शैया-समय, स्नान-शृंगार आदि से सम्बन्धित अष्टयाम सेवा के पद तथा होली-वसन्त, फूलडोल-झूलन आदि के नैमित्तिक सेवा के कुछ पद भी 'हितचौरासी' में प्राप्य हैं । कृष्ण की वेणु-ध्वनि के

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अलौकिक प्रभाव और हित वेश नन्दलाल की महिमा का गान भी हरिवंश जी ने एक पद में किया है :

मैं जु मोहन सुन्यौ वेणु गोपाल कौ ।
व्योम मुनियान सुर नारि विथकित भईं,
कहत नहिं बनत कछू भेद यति-ताल कौ ।।
श्रवण कुण्डन छुरित रुरत कुंतल ललित,
रुचिर कस्तूरि चंदन तिलक भाल कौ ।
चंद गति मन्द भई निरखि छवि काम गई,
देखि हरिवंश हित वेष नंदलाल कौ ।।

हरिवंश जी ने रास-लीला का भी गान किया है । उन्होंने रास के प्रसंग को सपना कर केवल रास-रचना और उसके अभाव का ही वर्णन किया है । श्याम के साथ राधा रासमण्डल में शोभायमान है । व्रजवालाओं के बीच राधा और नन्दलाल ऐसे शोभित हैं जैसे मर्कन मणियों के बीच धन-तड़ित । रास का एक पद देखिए, हरिवंण जी ने राधा की ही छवि का यहाँ भी वर्णन किया है—

श्याम संग राधिका रास मंडल बनी ।
बीच नन्दलाल ब्रजबाल चंपक बरन, ज्यौंव घन तड़ित बिच कनक मर्कत मनी ।।
लेत गति गान तत्त थेई हस्तक भेद, सरिगम पधनि' ये सप्त सुर नन्दिनी ।।
निर्त्य रस पहरि पट नील प्रकटिल छवि, वदन जतु जलद से मकर की चन्दिनी ।।
राग रागिनी तान मान संगीत मत, थकित राकेश नव शरद की जामिनी ।।
हित हरिवंश प्रभु हंस कटि केहरी, दूर कृत मदन मदमत्त गजगामिनी ।।

हरिवंश जी की भक्ति-भावना में नवधा भवित के अंग भी समाहित हैं । श्रवण, कीर्त्तन, नाम-स्मरण, पादसेवन, तन्मयता आदि तत्त्व राधावल्लभ से ही सम्बन्धित हैं । इस प्रेम-स्मरण-भक्ति में निष्कामता अत्यावश्यक है । हरिवंश जी कहते हैं कि सबसे प्रेम-भाव रखना, निष्काम-भाव से हृदय में राधाबल्लभ लाल का ध्यान और मुख पर उनका नाम और वृन्दावन धाम से विश्राम करना—यही भक्त का कर्त्तव्य है :

सबसों हित, निष्काम मति, वृन्दावन विश्राम ।
राधाबल्लभ लाल कौ हृदय ध्यान, मुख नाम ।। स्फुटवाणी २४

मन में राधाबल्लभ लाल और श्री राधा की प्रेमभक्ति होनी चाहिए और सशरीर भत्संगति में रहना चाहिये । कृष्ण कल्पतरु की सेवा से ही अलौकिक सुख प्राप्त हो सकता है :

तनहि राखि उत्संग में, मनहिं प्रेम रस भेव ।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतर सेब ।। —स्फुटवाणी २५

युगल-किशोर की निकुंज प्रेम रत-छवि का पान करना ही हरिवंश जी नयनों का सबसे बड़ा सौभाग्य मानते हैं :

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

निकसि निकुंज ठाड़े भये, भुजा परस्पर अंस ।

राधाबल्लभ मुख कमल निरखि नैन हरिवंश ॥२६॥

आँखें ही नहीं, समस्त इंद्रियों का लाभ यही है कि वे राधा और कृष्ण की सेवा में अर्पित हो जायें। यदि राधा-कृष्ण का नाम नहीं रटती तो रसना बेकार है, कट जाए, आँखें यदि उस मंजुल मुर्ति को नहीं देखतीं, तो फूट जायें, श्रवण उनका गुण नहीं सुनते तो फट जायें और राधा का यशगान यदि नहीं करती है तो वाणी व्यर्थ है—

रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि बिन फुटो नैन ।

श्रवण जु असुनौ बिन राधा यस बैन ॥२७॥

अनन्यता का और भी स्पष्ट उल्लेख उनकी स्फुटवाणी के दो पदों में मिलता हैं। एक में हरिवंश जी ने अन्य सभी देवी-देवताओं के स्थान पर केवल श्यामा राधा को अपनी आराध्या माना है, राधा को प्राणनाथ कहा है—

रहौ कोऊ काहू मनहिं दिये ।

मेरे प्राणनाथ श्री श्यामा शपथ करौ तृण छिये ॥

एक पद में गोपी या सखी के कृष्ण के प्रति अनन्य भाव का प्रकाशन हुआ है। सखी कहती है, कोई चाहे जिसे अपना स्वामी बनाये, मैं तो कृष्ण के प्रेम रंग में डूब गई हूँ। मुझे किसी का डर नहीं। मैं लोक-लाज किसी की परवाह नहीं करती। सोते-जागते हरदम मोहनलाल ही मेरे मन में छाये रहते हैं। कितनी अनन्यता, कितना दृढ़ विश्वास, कितनी निर्भयता है इस भक्ति-भावना में ! यह गोपी-भाव न जाने कैसे हरि-वंश जी की 'वाणी' में प्रकट हो गया ?

मोहनलाल के रंग राँची ।

मेरे ख्यान परौ जिन कौऊ दसौं दिसि माँची ।

कन्त अनन्त करौ जो कोऊ बात कहौं सुनि सांची ।

यह जिय जाहु, भलै सिर ऊपर, हौंव प्ररट ह्वै नाची ॥

जाग्रत शयन रहत उर ऊपर मणि कंचन ज्यों पांची ।

हित हरिवंश डरौ काकै डर हौं नाहिनी मति काँची । —स्फुटवाणी पद १२

कहते हैं, राधा-कृष्ण में अनन्यता के कारण हरिवंश जी ने एकादशी-व्रत का त्याग कर दिया था, क्योंकि एकादशी व्रत के दिन श्री राधा-कृष्ण-प्रसाद-अमृत का त्याग उन्हें गवारा नहीं था। राधा-कृष्ण के प्रसाद-अमृत की तुलना में कोटि एकादशी व्रत तुच्छ हैं। नवग्रह आदि की पूजा तथा मर्यादा को वे तुच्छ समझते थे। उनका कथन था—'**जो पै कृष्ण चरण मन अर्पित तौ करिहै कहा नवग्रह रंक**'। भला भले और बुरे ग्रह वेचारे क्या कर सकते हैं ? कृष्ण-कल्पतरु से अधिक शुभ ग्रह भी क्या दे सकते हैं ?

इस प्रकार राधा-कृष्ण के प्रति अनण्यता, दास्य, रूपासक्ति, आत्मनिवेदन आदि भावनाओं को प्रकट करते हुए हरिवंश जी ने युगल के नित्य-विहार-दर्शन का आनन्द-लाभ ही अपनी भक्ति का लक्ष्य बनाया है।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

भाषा-शैली—कला पक्ष

हितहरिवंश जी ने सुन्दर ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी ब्रजभाषा में सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछापी कवियों की भाषा की अपेक्षा संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। पर प्रचलित शब्दों को ही उन्होंने अपनाया है। उनके अनेक पदों की अनेक पंक्तियों में केवल क्रियापद और विभक्तियाँ ब्रजभाषा की रहती हैं, शेष समस्त पदावली संस्कृत के तत्सम शब्दों की दिखाई देती हैं। डा० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में "संस्कृत की तत्सम पदावली को ब्रज भाषा के प्रवाह में ढालने की कला में हरिवंश जी को अद्‌भुत क्षमता प्राप्त है।" एक उदाहरण देखिये :

विद्रुम-फटिक-विविधनिर्मितघर नव कर्पुर पराग न थोरी।
कोमल-किशलय-शयन-सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी।।

उपर्युक्त पंक्तियों में तत्सम शब्दों का सानुप्रासिक प्रयोग कितना मधुर है! संस्कृत की समासयुक्त पदावली भी ब्रजभाषा के प्रवाह में योग दे रही है।

हित जी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ कहीं-कहीं बोलचाल के शब्दों का बड़ा अनूठा प्रयोग किया है, एक उदाहरण देखिए :

निर्तनि भ्रकुटि वदन अंबुज मृदु सरस हास मधु बोलनि।
अति आसक्त लाल अलि लंपट बस कीने बिनु मोलनि।।

उपर्युक्त पंक्तियों के अन्त में 'बोलनि' और 'बिनु मोलनि' शब्द कैसा माधुर्य भर रहे हैं!

तद्‌भव-बहुला पदावली में भी अनुप्रास की छटा, माधुर्य, प्रवाह, भाव-व्यंजना आदि सब गुण पाये जाते हैं :

बन की कुँजनि कुंजनि डोलनि।
निकसत निपट सांकरी बीथिनी परसत नाँहि निचोलनि।।

हरिवंश जी की भाषा में वैसी चित्रात्मकता और कलात्मकता नहीं है जैसी सूरदास और नन्ददास की भाषा में पाई जाती है। हरिवंश जी की एक बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने अनलंकृत भाषा का भी अत्यन्त प्रभावी प्रयोग किया है। यह संभव हुआ है सार्थक और मैत्रीपूर्ण शब्दों की सहयोजना-द्वारा।

अलंकार-योजना

अलंकारों का अपेक्षाकृत कम प्रयोग हुआ है, फिर भी कहीं-कहीं सादृश्यमूलक अर्थालंकार और अनुप्रास, वीप्सा आदि शब्दालंकारों की छटा बहुत सुन्दर और स्वाभाविक है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का तथा शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग खूब हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में परम्परागत उपमानों का ही मुख्यतः प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं उपमान-योजना अनूठी है। कुछ उदाहरण देखिये :

सपमा रूपक : १. **'कनकलता-सी क्यों न विराजत अरुझी श्याम-तमालहौ।'**
२. **'श्रीफल-ऊरज कंचन-सी देही, कटि केहरि गुर्णसिभ झकोरी।'**

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

३. बेनी-भुजंग चन्द्रसत बरनी, कदली जंघ जलचर गति चोरी ।'

४. 'आज सम्हारत नाहिन गोरी ।

फूली फिरत मत्त करनी ज्यौं सुरत-समुद झकोरी ॥'

कहीं कृष्ण को नूतन धन और राधा को दामिनी बनाया गया है—'तू दामिनी मोहन नूतन धन' । पर काम-केलि-नायक-नायिका को उन्होंने हंस-हंसिनी या 'गज-करिनि' का रूप अधिक दिया है । मुख को इन्दु, नैन को चकोर, खंजन आदि का रूप परम्परागत ही है—

रूपक : १. हित हरिवंश हंस-हंसिनी सांवल-गौर
कहौ कौन करै जल तरंगनि न्यारे ।'

२. 'हित हरिवंश जुगल करिनी-गज विहरत प्रिय वन-प्यारी ।'

३. इन्दु गोविन्द वदन के कारण चितवन कौं भये नैन चकोर ।

४. भृकुटि-काम-कोदंड नैन-सर कज्जल रेख अनी ।
नाभि गंभीर मीन-मोहन मन खेलन को हृदनी ॥

उत्प्रेक्षा : १. 'परिरंभन विपरीत रति वितरित सरस सुरत निज केलि ।
इन्द्रनील मणिमय तरु मानौं लसत कनक की बेलि ॥

२. 'कोमल कटिल अलक सुठि शोभित अवलंबित युग गंडन ।
मानहुं मधुप थकित रस लंपट नील कमल के खंडन ॥

३. 'कुच-युग पर नखरेख प्रकट मनों शंकर शिर शशि टोल ।'

४. 'यों राजत कवरी गूंथित कच कनक कंज वदनी ।
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अर्ध विंधु मानो ग्रसित फनी' ॥

कहीं-कहीं अनूठी कल्पना भी देखी जाती है : राधा की शिथिल अलसाई पलकों में गोलक की पति से (कटाक्षों से) मोहन-रूपी मृग विंध गया है—

शिथिल पलक में उठति गोलक गति बिंध्यौ मोहन-मृग सकत न चल री ।

यहाँ उत्प्रेक्षा और रूपक का अनूठा प्रयोग हुआ है ।

प्रतीप अलंकार : मकल सुगंध विलास परावधि नगल मिले स्वर गावत ।
मृगज, मयूर, मराल, पिक् अद्भुत कोटि मदन शिर नावत ॥

राधा-कृष्ण के नेत्रों को देखकर मृगछौना, नृत्य को देखकर मयूर, गति से मराल, उनके गान को सुनकर भ्रमर और पिक तथा उनकी अद्भुत छवि को देखकर मदन भी नत-मस्तक हो गया ।

हित जी ने सूरदास की तरह 'कूट' पदों की रचना नहीं की । एक-दो पदों में परम्परागत उपमानों के प्रयोग में 'रूपकातिशयोक्ति अलंकार प्रकट हुआ है, पर पद 'कूट' नहीं बना है । उदाहरण देखिए :

दान दै री नवल किसोर ।
माँगत लाल लाडिलौ नागर प्रकट भई दिन-दिन की चोरी ।
नव नारंग कनक हीरावलि विद्रुम सरम जलज मनि गोरी ॥
पूरित रस पीयूष जुगल घट कमल कदलि खंजन की जोरी ।

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

कहीं-कहीं दृष्टांत, उदाहरण और वाक्यार्थोपमा आदि तर्कमूलक अलंकार भी दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण का सुन्दर उदाहरण निम्न पद में देखिये :

प्रीति न काहू की कानि विचारै।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै॥
ज्यौं सरिता सांवन जल उमंगत सनमुख सिंधु सिधारै।
ज्यौं नादहिं मन दिये कुरगनि प्रगट पारधी मारै॥
(जै श्री) हित हरिवंश हिलग सारंग सलभ शरीरहिं जारै।

दृष्टांत : '**यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौन सचु पायो।**
द्वै तुरंग पर चढ़त हठि परत कौन पै धायौ।'

शब्दालंकारों में अनुप्रास तो पंक्ति-पंक्ति में है। '**बन की कुंजनि कुंजनि डोलनि**'— में **वीप्सा** का सुन्दर प्रयोग हुआ है। **ध्वन्यर्थव्यंजना** (Onomatopoeia) के भी एक-दो उदाहरण मिलते हैं :

'**कल कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायौ।**'

अनुप्रास आदि इन शब्दालंकारों के प्रयोग से हित जी की भाषा में संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य और माधुर्य उत्पन्न हो गया है।

कहीं-कहीं **लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरे** भी दिखाई दे ही जाते हैं। वैसे लोकोक्ति और मुहावरे का प्रयोग हित जी ने कम ही किया है। "**प्यारौ भयौ चाहे मेरे नैननि के तारे**"—में 'नैननि के तारे' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है। लाक्षणिक प्रयोगों के भी एक-दो उदाहरण देखिए :

१. '**अब ही पंगु भई मन की गति बिनु उद्यम अनियास**'
२. '**प्रीति न काहू की कानि विचारै।**
नाइक निपुन नबल मोहन बिनु कौन अपनपौ हारै'॥
३. **नन्द के लाल हर्‌यौ मन मोर।**

हित जी की भाषा के सम्बन्ध में डा० विजयेन्द्र स्नातक जी ने कहा है, "ब्रज भाषा का जैसा समृद्ध और प्रांजल रूप हितहरिवंश जी की वाणी में प्रस्फुटित हुआ है वैसा किसी अन्य भक्त-कवि की रचना में नहीं हुआ। हमारे इस कथन को कदाचित् पक्षपातपूर्ण समझा जाय और सूरदास तथा नन्ददास-जैसे सुप्रसिद्ध कवियों की ब्रजभाषा को उनसे बढ़कर बताया जाय किन्तु समीक्षा की कसौटी पर हमारा कथन खरा उतरेगा। सूरदास की भाषा में ब्रज भाषा का आंचलिक पुट है, लोक भाषा के अधिक समीप होने के कारण मसृण और परिष्कृत शब्दों की ओर उनका झुकाव नहीं है। नन्ददास ने अवश्य शब्द-चयन में परिष्कार पर बल दिया है और शब्द-मैत्री तथा ध्वन्यात्मक नाद-सौंदर्य को अपनाकर 'नन्ददास जड़िया' का पद पाया है, किन्तु नन्ददास की भाषा में हितहरिवंश के समान समृद्धता नहीं है।"[1]

यद्यपि स्नातक जी ने पक्षपात की बात का पहले ही निषेध करना चाहा है,

---

१. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, पृ० ३२८

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पर हमें नम्रतापूर्वक कहना पड़ रहा है कि विद्वान लेखक के उपर्युक्त कथन में कुछ पक्षपात ही प्रतीत होता है। यदि भाषा की समृद्धता से स्नातक जी का अभिप्राय संस्कृत की तत्सम-बहुल पदावली के प्रयोग से है, तो हमें कुछ नहीं कहना है। पर किसी कवि की भाषा में संस्कृत की तत्सम पदावली से ही समृद्धता नहीं आ जाती। इसमें संदेह नहीं कि हरिवंश जी की भाषा का रूप उनके समस्त पदों में एक-सा ही है, जबकि सूरदास, नन्ददास की रचनाओं में भाषा का प्रयोग बड़ा असमान है : कुछ पदों और रचनाओं में उनकी भाषा उत्कर्ष के चरम पर पहुँची दीखती है तो कुछ छंदों, पदों और रचनाओं में उनकी भाषा का बड़ा ही लचर प्रयोग हुआ है। पर किसी कवि की भाषा-शैली की शक्ति उसकी उत्कृष्टतम रचनाओं के ही आधार पर आँकी जाती है। हमें यह कहने में जरा भी संकोच या पक्षपात का भय नहीं रहा है कि सूरदास और नन्ददास-जैसी श्रुति-मधुर, अभिव्यंजनापूर्ण, कलात्मक और समृद्ध भाषा का प्रयोग हरिवंश जी नहीं कर सके। नन्ददास और सूरदास-जैसी शब्द-मैत्री, सानुप्रासिकता, चित्रात्मकता तथा ध्वन्यात्मकता और कलात्मक अलंकृति हरिवंश जी की भाषा में नहीं है।

छन्द-प्रयोग — हितहरिवंश जी ने लय, गति, यति, ताल से विविध राग-रागनियों में बँधे पदों (गीतों) का ही मुख्य प्रयोग किया है। अतः उनकी मुख्य शैली गेय पद-शैली है, पर फिर भी उन्होंने अपनी 'स्फुट वाणी' में ४ दोहे, दो कुण्डलिया छन्द, दो छप्पय और चार सवैयों की रचना भी की है। दो-चार सवैये और छप्पय 'हित चौरासी' में भी प्राप्य हैं।

गीति तत्त्व—श्री हितहरिवंश ने केवल १०८ पदों की रचना की। ८४ पद उनकी 'हित चौरासी' में संकलित हैं और १४ पद स्फुट वाणी में हैं। हित जी बड़े संगीतज्ञ विद्वान थे। साहित्य और संगीत में उनकी समान गति थी। उनके सभी पद विविध राग-रागनियों में बंधे हैं। 'हित चौरासी' के पद २४ रागों में हैं। छः पद राग विभास में, ७ बिलावल में, ४ राग टोडी में, २ आसावरी में, १ गौड़ में, ६ राग गौरी में, ७ देवगंधार में, १६ सारंग में, ६ कल्याण में, ४ राग मलार में, ६ कान्हरे में, ७ धनाश्री में, २ वसंत में और ४ राग केदारे में हैं।

श्रृंगार रस की सरसता से ओत-प्रोत हित जी के पदों में तदनुकूल कोमल-कांत माधुर्य-व्यंजक पदावली का प्रयोग हुआ है। अनुप्रास की योजना से पंक्ति-पंक्ति में संगीतात्मकता और मंजुल प्रवाह उत्पन्न हो गया है। ब्रज भाषा की सानुप्रासिक विशेषता हित जी की पदावली में भी खूब पाई जाती है। नाद-सौंदर्य से संगीत की अद्भुत छटा उनके गीतों में आ गई। गति, यति, लय और तुक में बँधे उनके गीत दोनों प्रकार का आनन्द प्रदान करते हैं—एक भाव-जन्य रसानन्द, दूसरा संगीतमय ध्वनि का रसानन्द। एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

वन की कुंजनि कुंजनि डोलनि।
निकसत निपट सांकरी बीथिनि परसत नाहिं निचोलनि॥

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

प्रातकाल रजनी सब जागे सूचत सुख दृग लोलनि ।
आलसवंत अरुण अति व्याकुल कछू उपजति गति गोलनि ।।
निर्तन भृकुटि वदन अंबुज मृदु सरस हास मधु बोलनि ।
अति आसक्त लाल अलि-लंपट बस कीने बिनु मोलनि ।।
बिलुलित सिथिल स्याम छूटी लट राजत रुचिर कपोलनि ।
रति विपरीत चुम्बन-परिरंभन चिबुक चारु टक टोलनि ।।
कबहुँ श्रमति किसलय सिज्या पर मुख अंचल झक झोलनि ।
बिन हरिवंश दासि हिय सींचत वारिधि-केलि-कलोलनि ।।

इस पद में गीत-काव्य की कोमलकांत पदावली, संगीतात्मकता, प्रसाद और माधुर्य गुणयुक्त सानुप्रासिक शब्द-योजना, प्रवाहात्मकता आदि भाषा-शैलीगत विशेषताओं के साथ-साथ भाव-प्रवणता, संक्षिप्तता, भाव-ऐक्य आदि गुण भी स्पष्ट हैं। गीति-काव्य में आत्माभिव्यक्ति अथवा अन्तःपक्ष की जितनी प्रधानता हो, उतना ही उसकी प्रभावी शक्ति बढ़ी-चढ़ी होती है । यद्यपि हरिवंश जी के पदों में राधा-कृष्ण-प्रेम का वर्णन हुआ है और सीधी आत्माभिव्यक्ति नहीं है, पर सूर के लीला-गान की तरह हर पद के अन्त में उनके नाम की छाप उनके गीतों को पर्याप्त निजीपन प्रदान कर देती है ।

गीत और गीति-काव्य की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ होते हुए भी हितहरिवंश के पदों में न तो मीरां के पदों तथा सूर, तुलसी आदि के विनय-भक्ति के पदों-जैसी आत्माभिव्यंजना पाई जाती है, अर्थात् उनके पद उतने अन्तर्मुखी (Introvert) नहीं हैं, जितने मीरां के पद, न ही उनमें राग-रागिनियों की वैसी संगीतात्मक विविधता पाई जाती है जैसी सूरदास के पदों में, और न ही उतनी भावप्रवणता और भाव-गहनता ही दीखती है जितनी मीरां और सूरदास के पदों में है । हितजी के पदों में वैसी सहजता और लोकगीत-शैली की प्रवृत्ति भी नहीं पाई जाती, जो मीरां और सूरदास के पदों की विशेषता है ।

सूरदास और मीरां के पदों में जैसे प्रत्येक पद की टेक में भाव सिमटा हुआ रहता है और अन्तिम पंक्ति में भक्त की आत्मा जैसे अपने आराध्य के भाव में लीन प्रतीत होती है, वह विशेषता भी हित हरिवंश की पदावली में नहीं है । पदावली का संगीत-माधुर्यपूर्ण सहज-प्रवाह जैसा सूर के पदों में है, वैसा हित जी के पदों में नहीं । यही कारण है कि संगीतकारों में भी हितहरिवंश के पद उतने लोकप्रिय नहीं हो पाए जितने सूर, मीरां आदि के पद लोकप्रिय हुए । इसमें सन्देह नहीं कि उस युग में संगीत की शास्त्रीय पद्धति के विकास में हितहरिवंश के पद भी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण रहे, किन्तु शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद आदि शैलियों तथा शास्त्रीय रागों की विविधता की जो विशेषता सूरदास के पदों में पाई जाती है, वह हितहरिवंश के पदों में नहीं है ।

हितहरिवंश की पदावली में वर्णनात्मकता भी अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण भावप्रवणता उतनी नहीं आ पाई । सूर के पदों-जैसी भाव-विविधता भी हित जी की

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पदावली में नहीं है। हितहरिवंश के पदों में भाव-स्थिति अत्यन्त सीमित है। उन्होंने केवल कुंज-विहार-लीला के अन्तर्गत प्रेम का सीमित प्रकाशन किया है। इसी से उनके पदों में भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और भाव-विविधता नहीं है। हित-प्रभु का विषय केवल शृंगार रहा है और शृंगार के भी अत्यन्त सीमित क्षेत्र को उन्होंने छुआ है। इसी से हित जी के पदों में भावानुभूति की दृष्टि से एकरसता-सी पाई जाती है। सच तो यह है कि औदात्त्य की दृष्टि से भी सूर के पदों की तुलना में हितहरिवंश के पद बहुत हल्के पड़ते हैं। भगवद्भक्ति का ही नहीं, मानवीय उदात्त भावानुभूतियों का भी जैसा स्पष्ट, मार्मिक, वैविध्यपूर्ण प्रकाशन सूर के पदों में हुआ है, वैसा हितहरिवंश के पदों में नहीं है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यद्यपि हितहरिवंश के पद हिन्दी साहित्य में विद्यापति की समृद्ध गीत-परम्परा को आगे बढ़ाने वाले सिद्ध हुए और गीतकार के रूप में हितहरिवंश का महत्त्व अक्षुण्ण है तथापि हितहरिवंश सूरदास, मीरांबाई तथा तुलसीदास जैसे प्रथम श्रेणी के प्राचीन गीतकार-कवियों की कोटि में नहीं ठहरते। संगीतकारों और गायकों में जैसे सूरदास और मीरां के पद लोकप्रिय हुए, वैसे हित-हरिवंश के नहीं। फिर भी हित-प्रभु के कुछ पद गीत-काव्य के चरमोत्कर्ष को प्रकट करते हैं, सन्देह नहीं।

सम्प्रदाय के अन्य कवि

श्री हरिराम व्यास—हिताचार्य के आरम्भिक शिष्यों और इस सम्प्रदाय के अनुयायी भक्त-कवियों में श्री हरिराम व्यास का शीर्ष स्थान है। व्यास जी के पिता का नाम पं० सुकुल ब्रोमख्य था। व्यास जी अपने समय के बहुत बड़े शास्त्रज्ञ विद्वान थे। सं० १५९१ में ४२ वर्ष की आयु में ये नवलदास वैरागी के साथ वृन्दावन आये थे और हरिवंश जी के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए थे। फिर ये अपने घर ओड़छा नहीं गये। वृन्दावन में बहुत समय तक रहकर इन्होंने हरि-वंश जी की रस-रीति के अनुसार राधा-कृष्ण की विहार-लीला का भजनानन्द प्राप्त किया और स्वयं रसोपासना के पद रचे। श्री हित हरिवंश की मृत्यु के बाद ये बहुत दुखी हुए। इनका जन्म सं० १५४९ में ओड़छा में हुआ था। इन्होंने लगभग १०० वर्ष की दीर्घायु पाई थी। व्यास जी की वाणी लगभग ९०० पदों की है। इसके दो भाग हैं। एक में सिद्धांत के पद हैं—२९४ पद और १४६ साखियाँ। इनमें कवि ने वृन्दावन की शोभा-महिमा, संत-महिमा, सत्-संगति, पाखंडियों की निंदा आदि का मधुर गान तथा उपदेश-प्रवचन प्रकट किया है। दूसरे भाग में रसोपासना के पद हैं, जिनमें राधा-कृष्ण की निकुंज-विहार-लीला का गान है। इन पदों की संख्या ४५५ है। इनमें कवि की 'रास पंचाध्यायी' भी सम्मिलित है। पदों का नमूना देखिए :

अब मैं वृन्दावन रस पायौ।
राधा चरन शरण मन दीनौं मोहनलाल रिझायौ॥
सोयो हुतौ विषय मंदिर मैं हित गुरु टेर जगायौ।
अब तो व्यास बिहार विलोकित शुक नारद सुनि गायौ॥

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

अलंकृत रूप-चित्रण : **चन्द्रबिम्ब पर वारिज फूले ।**

तापर फनि के सिर पर मनिगन, तर मधुकर मधु मद मिल झूले।
तहाँ मीन, कच्छप, सुक खेलत, वंसिहि देखि न भये विकूले ।।
विद्रुम वार्‍यौ मैं पिक बोलत, केसरि नख पद नारि गरूले ।
सर में चक्रवाक वक व्यालिनि-विहरत वैर परस्पर भूले ।।

२. श्री ध्रुवदास जी—राधाबल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त ध्रुवदास जी जाति के कायस्थ थे। ये देववंद के रहने वाले थे। इनके बाबा श्री बीठलदास और पिता श्यामदास भी परम वैष्णव भक्त थे। ध्रुवदास जी का रचना-काल सं० १६५० से सं० १७०० है। अपनी किशोरावस्था में ही ध्रुवदास जी घर-बार छोड़कर वृन्दावन आ गये थे और हित-प्रभु की रस-रीति के अनुसार राधा-कृष्ण की उपासना करने लगे थे। श्री हित हरिवंश के तृतीय पुत्र गोस्वामी गोपीनाथ जी इनके दीक्षा-गुरु थे। ध्रुवदास जी न केवल प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे, अपितु बड़े बहुज्ञ विद्वान भी थे। उनकी लीला-रचनाओं में विषय और शैली की विविधता देखकर आश्चर्य होता है। 'भक्त नामावली-लीला' में भक्तों का जो परिचय है, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। आपकी ४२ लीला रचनाएँ हैं और १०३ पद। लीला-रचनाओं में ध्रुवदास जी ने राधाबल्लभ सम्प्रदाय का सिद्धांत-विवेचन बड़ी सूझ-बूझ और स्पष्टता के साथ किया है। रचना का नमूना देखिए :

राधा का रूप-वर्णन : **छबि ठाड़ी कर जोरै, गुन-कला चौर ढौरैं,**
कवित्त-सवैया शैली, **दुति सेवै तन गोरै, रति बलि जाति है ।।**
अमूर्त मूर्त पर न्यौछावर है। **उजराई कुंज ऐन सुथराइ रची सैन,**
चतुराई चितै नैन अति ही लजाति है ।।

गीत-शैली : **सोभित आज छबीली जोरी ।**
प्रेम-रूप-युगल : **सुन्दर नवल रसिक मन मोहन अलबेली नव वयस किशोरी ।।**
बेसर उभय हंसनि में डोलत सो छवि लेत प्रान चित चोरी ।
हित ध्रुव फंदी मीन ये अंखियां निरखत रूप प्रेम की डोरी ।।

३. नागरीदास जी—नागरीदास नाम के तीन कृष्ण-भक्त-कवि मध्यकाल में हुए हैं। राधाबल्लभ सम्प्रदाय के इन नागरीदास के अतिरिक्त एक नागरीदास स्वामी हरिदास (हरिदासी सम्प्रदायी) के शिष्य हुए हैं, दूसरे पुष्टिमार्गी बल्लभ सम्प्रदायी नागरिया हुये हैं। राधाबल्लभीय इन नागरीदास का उपनाम 'नेही' प्रसिद्ध था। ये वेरछा (बुन्देलखण्ड) के रहने वाले पंवार क्षत्रिय कुल से थे। वृन्दावन आकर इन्होंने वनचन्द्र गोस्वामी से दीक्षा ली थी। श्री हित हरिवंश की वाणी के ये अनन्य प्रेमी थे। राधाबल्लभ सम्प्रदाय के उपासना-मार्ग को व्यवस्थित रूप देने में इनका अपूर्व योग है। इनका वर्तमान काल १७वीं शताब्दी विक्रमी है। इनकी वाणी में नौ सौ से ऊपर दोहे और तीन सौ से अधिक पद सम्मिलित हैं। आपकी ब्रजभाषा में कहीं-कहीं बुंदेलखण्डी शब्द भी प्रयुक्त दिखाई देते हैं। दोहों में अधिकतर सिद्धांत-कथन है। रस के पदों में राधाकृष्ण की निकुंज-विहार-लीला का वर्णन हुआ है। नमूना देखिए :

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

दोहा : **विषै-वासना जारिकै झारि उड़ावै खेह ।**
मारग रसिक नरेस के तब ढंग लागै देह ।।

पद : **प्रेम पपीहा की बलि हौं री ।**
रटत रहत मेरौ सुभग सांवरो इकटक तेरी सौंरी ।।
मगन भयौ तन मन गुन गावै परी है रूप उर थौंरी ।
नागरी छिनक परी है कैसें तो बिन कल कहि धौंरी ।।
इतनौं श्रवन सुनत आतुर ह्वै लली अली संग हौं री ।
नागरीदास मिलि प्रीतम सौं लता ललित गृह मौं री ।।

४. श्री हितरूपलाल जी—रूपलाल जी उच्च कोटि के कवि-भक्त थे। इनका जन्म सं० १७३८ वैसाख कृष्णा सप्तमी को हुआ था और निकुंज-गमन सं० १८०१ को । इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त-कवि चाचा हित वृन्दावनदास इनके शिष्य थे। इनके पद अलग-अलग ८४-८४ पदों के 'विजय चौरासी प्रथम' और 'विजय चौरासी द्वितीय' नामक दो संग्रहों में संकलित हैं। दोहों में रची इनकी छोटी-छोटी और भी कई रचनाएँ मिलती हैं। पदों का नमूना देखिए :

बड़ भागी सोई जगु जानौं ।
जाके भक्ति भाव राधा वर चरन कमल चित आनौं ।।
श्री वृन्दावन रज अनुरागी प्रेम पंथ पहिचानौं ।
नित्य निकुंज विहार सार रस भजन सजनि सुख ठानौं ।।
करत मानसिक मन रंगु भीनौ प्रेम रूप ललचानौं ।
(जै श्री) रूपलाल हित सरनागति सुख सहज संपदा मानौं ।।

५. श्री दामोदरदास (सेवक जी)—सेवक जी गढ़ा ग्राम (जबलपुर के पास) के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ये हरिराम व्यास के समकालीन थे। ये हित-हरिवंश जी के निकुँज-गमन के बाद वृन्दावन पहुँचे थे और उनके निधन का समाचार पाकर बहुत दुखी हुए थे। इन्होंने हित प्रभु को मानस-गुरु बना लिया था। इन्होंने 'हित चौरासी' का मर्म समझाने और राधाबल्लभ सम्प्रदाय का तात्त्विक विवेचन करने वाली वाणी की रचना की। इनकी वाणी सम्प्रदाय में इतनी लोकप्रिय हुई कि सेवक वाणी 'हित चौरासी' के साथ रखकर गायी जाने लगी। सेवकवाणी १६ प्रकरणों में है—१. श्री हित जस विलास, २. श्री हित विलास, ३. श्री हरिवंश नाम प्रताप जस, ४. श्री हित वाणी प्रकरण, ५. श्री हित इष्टाराधन प्रकरण, ६. धर्मिनकृत प्रकरण, ७. रस-रीति प्रकरण, ८. अनन्य टेक प्रकरण, ९. श्री हित कृपा-अकृपा प्रकरण, १०. भक्त भजन प्रकरण, ११. ध्यान प्रकरण, १२. मंगलगान प्रकरण, १३. पाके धर्मी, १४. काचे धर्मी प्रकरण, १५. अनलभ्यः लाभ प्रकरण और १६. मान सिद्धांत प्रकरण। सेवक जी हित-मार्ग के सच्चे अनुयायी थे।

६. स्वामी चतुर्भुजदास—ये सेवक जी के मित्र गढ़ा ग्राम-निवासी थे। इन्होंने १७वीं शताब्दी वि० के द्वितीय दशक में वृन्दावन आकर श्री वनचन्द्र गोस्वामी से दीक्षा ली थी। चतुर्भुजदास जी बड़े निर्भीक थे। इन्होंने अपने मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

पर घूम-घूम कर रस-भक्ति का प्रचार किया। इनकी १२ 'यश' रचनाएँ—धर्मविचार यश, भक्तिप्रताप यश, संत प्रताप यश, मोहिनी यश, अनन्य भजन यश, श्री राधा प्रताप यश, मंगलसार यश आदि प्रकाशित हो चुकी हैं। 'श्री राधा प्रताप यश' और 'मंगल सार यश' में पर्याप्त काव्य-कौशल दिखाई देता है। 'श्री राधा सुप्रताप यश' से एक उद्धरण देखिए, श्री कृष्ण राधा के चरणों पर रीझकर पादसेवन और अर्चन कर रहे हैं—

जावक रचि चरननि जुबनाई, नूपुर माल रुचिर पहिनाई।
मृगमद तिलक देत रचि भाल, पहिरावत पहुपनि की माल।

७. **चाचा हित वृन्दावनदास**—चाचा जी का रचनाकाल १८वीं शताब्दी वि० का अंत और १९वीं का पूर्वार्द्ध काल है। राधाबल्लभ सम्प्रदायी भक्त-कवियों में परिमाण की दृष्टि से चाचा वृन्दावनदास सबसे बड़े वाणीकार हुए हैं। इनके छोटे-बड़े १५८ ग्रंथ बताये जाते हैं। पदों का एक सागर 'लाडसागर' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने दोहा-चौपाई शैली में 'ब्रज-प्रेमानन्द-सागर' की रचना की। चाचा जी ने कई 'अष्टयाम' भी रचे। राधाबल्लभ सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं को निकुंज के सीमित क्षेत्र से निकाल कर ब्रज-लीलाओं का विस्तृत क्षेत्र प्रदान करने में चाचा जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सम्प्रदाय के रसिक भक्तों का परिचय देने वाली इनकी 'रसिक अनन्य-परिचयावली' का ऐतिहासिक महत्त्व है। ये बड़े विनोदी स्वभाव के थे। लीला-वर्णन-वैचित्र्य और शैली की विविधता इनकी वाणी की विशेषता है। सभी प्रचलित शैलियों—दोहा, दोहा-चौपाई, कवित्त-सवैया, कुण्डलिया, पद आदि का इन्होंने सफल प्रयोग किया है। रचनाओं का नमूना देखिए :

पद शैली : **भींजत कुंजनि तर छवि पावत।**

उत नव नीरद इतहि श्याम घन दुहुं दिसि बहस बढ़ावत॥
उत दामिनि इत भामिनि राधा छिन-छिन छवि सरसावत।
उतहिं दुरत इत अचल विराजत मुसकनि हियहि सिरावत॥
उतहिं बरसि अवनी करि सीतल गरज शिखंडनि भावत।
इत मुरली मग ह्वै त्रिभुव कौ बरस अमीरस प्यावत॥
उत मारुत अरि तैं डरि विचरत इत नित नव दरसावत।
वृन्दावन हित रूप परावधि विवि घन तड़ित लजावत॥

इनके अतिरिक्त श्री लाल स्वामी जी (रचना काल सं० १६३०—१६७५। कवित्त-सवैया, छप्पय, कुण्डलिया आदि छंदों की वाणी-रचना), श्री कृष्णचन्द्र गोस्वामी (जन्म सं० १५८७। रचना केवल लगभग ५० पद), श्री दामोदर स्वामी (रचना-काल १६७० वि० से १७००। रचनाएँ—'रासपंचाध्यायी', 'भक्ति भेद सिद्धांत', उत्सवों के पद, 'बिहावला', 'रहसविलास' आदि), सहचरिसुख जी (रचनाकाल १८वीं शती का पूर्वार्द्ध। रचना कुछ फुटकर पद), श्री कल्याण पुजारी जी (रचना-काल १७वीं शती वि० का अन्त। रचना लगभग दो सौ पद), श्री रसिक दास जी (रचनाएँ

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

—'रस कदंब चूड़ामणि' रचना सं० १७५१, बीस 'लता' रचनाएँ। श्री हिताष्टक और कुछ फुटकर पद), श्री हित अनूप जी (रचना २९१ दोहा-चौपाइयों का 'माधुर्यविलास', रचनाकाल १८वीं शताब्दी का मध्य), श्री अनन्य अली जी, श्री कृष्णदास जी भावुक, श्री चन्द्र लाल गोस्वामी, श्री प्रेमदास जी, श्री लाडलीदास जी (रचनाकाल १८वीं शती का पूर्वार्द्ध। रचना 'सुधर्म बोधिनी') आदि अनेक भक्त-कवियों ने इस सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति को अपनाया और अपनी-अपनी वाणी-द्वारा सम्प्रदाय के साहित्य को समृद्ध किया।

Accession No. 12222
Class No.
Book No.

Library Govt. College for Women
Nawakadal, Srinagar.

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri

श्रेष्ठ शोध-आलोचना-साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
प्रेमचन्द की उपन्यास-कला का उत्कर्ष	डा. कृष्णदेव झारी	२८-00
म. पं. राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य	डा. रवेलचन्द आनन्द	४0-00
कथाकार राहुल सांकृत्यायन	,,	१८-00
राहुल सांकृत्यायन : विचारक और निबंधकार	डा. रवेलचन्द आनन्द	१0-00
राहुल जी का जीवनी-यात्रा-साहित्य	जनक दुलारी सहगल	१२-00
मध्यकालीन कृष्णकाव्य	डा. कृष्णदेव झारी	३५-00
अष्टछाप और सूरदास	,,	२0-00
अष्टछाप और नंददास	,,	२२-00
मैथिल-कोकिल विद्यापति	,,	१५-00
मीराबाई	,,	१0-00
हितहरिवंश गोस्वामी	,,	१0-00
रसखान	,,	१0-00
अष्टछाप और परमानंददास	,,	१५-00
निबंधकार रामचंद्र शुक्ल	,,	८-00
हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य : तुलनात्मक अध्ययन	डा. कृष्णा रैणा	४0-00
हिन्दी निर्गुण संत-काव्य : दर्शन और भक्ति	,,	२५-00
कश्मीरी निर्गुण संत काव्य : दर्शन और भक्ति	,,	२५-00

शारदा प्रकाशन
महरौली, नई दिल्ली-११००३०

CC-0. Kashmir Research Institute, Srinagar. Digitized by eGangotri